

सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित



पारव्य प्रकाश

कबीर जयन्ती विशेषांक



वर्ष 49

जुलाई-अगस्त-सितम्बर
2019

अंक 1

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका विषय-सूची

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—महोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

कविता

समुझि मन बौरा हो
ऐसे संत कबीर हैं
वे हैं सद्गुरु कबीर

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2
बीजक चिंतन / 46

लेख

कबिरा खड़ा बाजार में
अकाट्य कबीर
समता का संगीत सुरीला
या दुनिया दो रोज की
कुशल-मंगल?
सुंदर सूक्तियां
मन और व्यवहार

कहानी

हौसला

लघुकथा

सीख

लेखक

सद्गुरु कबीर
ब्रह्मचारी रामलाल
प्यारे लाल साहू

पृष्ठ

1
20
30

व्यवहार वीथी / 21

परमार्थ पथ / 37

श्री शिवकुमार मिश्र 6
डॉ. सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु' 24
श्री चन्द्रप्रभ जी महाराज 31
धर्मेन्द्र दास 39
सौम्येन्द्र दास 44
साध्वी सुबुद्धि 53
54

श्री भावसिंह हिरवानी 49

श्री विजय चितौरी 48

विशेष ध्यान शिविर

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज के तत्त्वावधान में निम्न स्थलों पर निम्नांकित तिथियों पर विशेष ध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है—

5 अगस्त से 11 अगस्त, 2019

: श्री कबीर संस्थान, नवापारा (राजिम), रायपुर, छत्तीसगढ़
सम्पर्क : 08720893818, 08827605799

20 अगस्त से 27 अगस्त, 2019

: कबीर पारख संस्थान, प्रीतमनगर, प्रयागराज
सम्पर्क : 09451369965, 09451059832

उक्त ध्यान शिविरों में सीमित साधकों के लिए ही व्यवस्था रहेगी। अतः कोई भी साधक किसी भी शिविर में बिना पूर्व अनुमति के न आवें। जो साधक जहां के शिविर में भाग लेना चाहें, वहां के पते पर ही संपर्क करें, अन्य स्थल पर नहीं। जो साधक ध्यान शिविर के दौरान पूर्ण मौन पालन कर सकें तथा पूरी अवधि तक रुक सकें वे ही भाग लें। ध्यान शिविर में भाग लेने वालों का शहर, बाजार जाना वर्जित रहेगा।

कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद

का

बयालीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक—11-12-13 अक्टूबर 2019

दिन—शुक्रवार, शनिवार, रविवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल—कबीर आश्रम, कबीर नगर, प्रयागराज

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 12.50 रुपये,

वार्षिक 50 रुपये,

आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज-211011

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo.com

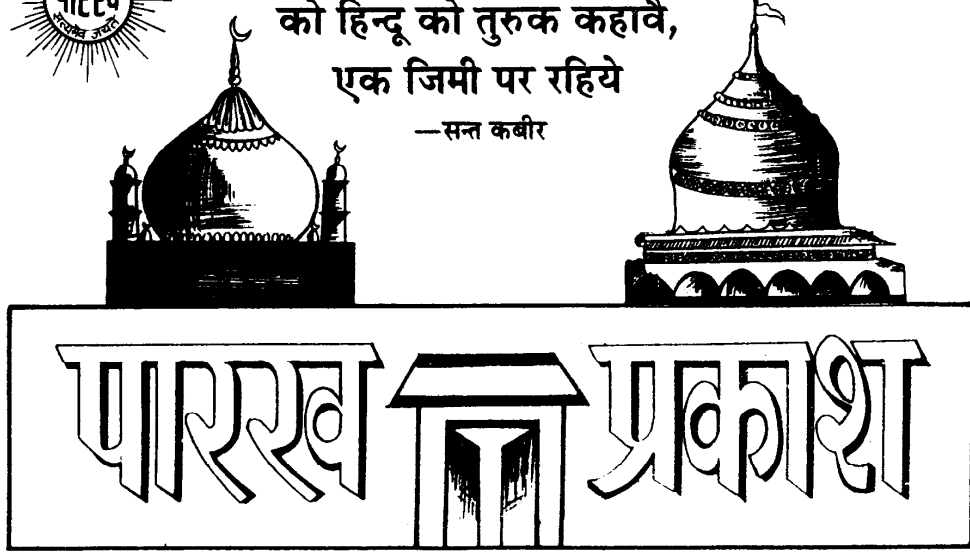
ग्राहक नं०



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



जो तू आया जगत में, तो ऐसा करि लेय ।

कर साहेब की बंदगी, भूखे को कछु देय ॥ सद्गुरु कबीर ॥

वर्ष 49]

प्रयागराज, आषाढ, वि. सं. 2076, जुलाई 2019, सत्कबीराब्द 621

[अंक 1

समुझि मन बौरा हो

जारो जग का नेहरा, मन बौरा हो ॥ 1 ॥ ऊँच नीच समझेउ नहीं, मन बौरा हो ॥ 15 ॥
जामें सोग सन्ताप, समुझि मन बौरा हो ॥ 2 ॥ घर घर खायो डाँग, समुझि मन बौरा हो ॥ 16 ॥
तन धन से क्या गर्भ सी, मन बौरा हो ॥ 3 ॥ ज्यों सुवना ललनी गह्यो, मन बौरा हो ॥ 17 ॥
भस्म कीन्ह जाके साज, समुझि मन बौरा हो ॥ 4 ॥ ऐसो भ्रम विचार, समुझि मन बौरा हो ॥ 18 ॥
बिना नेव का देव घरा, मन बौरा हो ॥ 5 ॥ पढ़े गुने क्या कीजिये, मन बौरा हो ॥ 19 ॥
बिन कहगिल की ईंट, समुझि मन बौरा हो ॥ 6 ॥ अन्त बिलैया खाय, समुझि मन बौरा हो ॥ 20 ॥
कालबूत की हस्तिनी, मन बौरा हो ॥ 7 ॥ सूने घर का पाहुना, मन बौरा हो ॥ 21 ॥
चित्र रचो जगदीश, समुझि मन बौरा हो ॥ 8 ॥ ज्यों आवें त्यों जाय, समुझि मन बौरा हो ॥ 22 ॥
काम अन्ध गज बशि परे, मन बौरा हो ॥ 9 ॥ नहाने को तीरथ घना, मन बौरा हो ॥ 23 ॥
अंकुश सहियो सीस, समुझि मन बौरा हो ॥ 10 ॥ पुजबे को बहु देव, समुझि मन बौरा हो ॥ 24 ॥
मर्कट मूठी स्वाद की, मन बौरा हो ॥ 11 ॥ बिनु पानी नर बूड़हीं, मन बौरा हो ॥ 25 ॥
लीन्हों भुजा पसारि, समुझि मन बौरा हो ॥ 12 ॥ तुम टेकेउ राम जहाज, समुझि मन बौरा हो ॥ 26 ॥
छूटन की संशय परी, मन बौरा हो ॥ 13 ॥ कहहिं कबीर जग भर्मिया, मन बौरा हो ॥ 27 ॥
घर घर नाचेउ द्वार, समुझि मन बौरा हो ॥ 14 ॥ तुम छाड़हु हरि की सेव, समुझि मन बौरा हो ॥ 28 ॥

कहैं कबीर विचार

कबीर की वाणी में कुछ ऐसे कड़वे-मीठे घोल हैं कि वह सबको अपनी ओर आकर्षित करती है और केवल आकर्षित ही नहीं करती अपितु कुछ लोगों को रिझाती है, कुछ लोगों को खिझाती है तो कुछ लोगों को चौंकाती है। जो मानवता, धर्म एवं अध्यात्म के शुद्ध स्वरूप के प्रेमी हैं, जो जाति-वर्ण-वर्ग रहित मानवता के पक्षधर हैं और इसकी स्थापना के लिए प्रयत्नशील हैं, जो मजहबी-सांप्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठकर शील, संयम और सत्य को धर्म समझते हैं और जो पिण्ड से ब्रह्माण्ड तक सबसे अनासक्त होकर मन को अंतर्मुख करके आत्मलीन होने को ही अध्यात्म का शुद्ध उच्चतम स्वरूप समझते हैं कबीर की वाणी उन्हें रिझाती है, क्योंकि कबीर-वाणी इन्हीं का ही निर्देश करती है। इसके विपरीत जो लोग जाति और वर्ण-व्यवस्था के समर्थक हैं, जो अपने को जन्मजात ऊंच, पूज्य और पवित्र मानकर बाकी अधिकतम लोगों को जन्मजात नीच, अछूत और अपवित्र मानकर उन पर अपना वर्चस्व एवं दबदबा कायम रखना चाहते हैं; जो मत-मजहब-संप्रदायों को धर्म तथा अपने-अपने कर्मकाण्डों-विश्वासों को धर्म का वास्तविक स्वरूप मानते हैं तथा जो किसी लोक-लोकान्तरवासी या सर्वव्यापक ईश्वर-ब्रह्म की कल्पना कर उसको सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान, आनंदकंद मानकर उसमें मिलकर पूर्ण हो जाने को अध्यात्म समझते हैं कबीर-वाणी उन सबको खिझाती है, क्योंकि कबीर-वाणी उन सबके झूठे विश्वासों, पाखण्डों, मिथ्या मान्यताओं एवं दंभ का परदाफास कर सत्य-धर्म का उद्घाटन करती है।

जिन लोगों को यह दृढ़ विश्वास है और जिसे लेकर अहंकार का भूत जिनके सिर पर सवार है कि हमारा

धर्मग्रंथ अपौरुषेय, ईश्वरीय वाणी और स्वतः प्रमाण है, हमारे महापुरुष ईश्वर के अवतार, पुत्र या पैगंबर हैं तथा इन पर विश्वास करने वाला ही ईश्वर-खुदा तक पहुंच सकता है या उन्हें स्वर्ग-जन्नत मिल सकता है, इन पर विश्वास न करने वाला नास्तिक या काफिर और नरकगामी है, कबीर-वाणी उन सबको भी खिझाती है साथ-साथ चौंकाती है, क्योंकि कबीर-वाणी साफ शब्दों में कहती है कि दुनिया के सभी धर्मग्रंथ मानवरचित हैं इसलिए कोई धर्मग्रंथ स्वतः प्रमाण नहीं है, सभी महापुरुष मनुष्य हैं, कोई ईश्वर-खुदा या स्वर्ग-बिहिशत का ठेकेदार नहीं है। ईश्वर-खुदा मनुष्य के अपने आपा से अलग कुछ नहीं है तथा स्वर्ग या जन्नत सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार और मन की निर्मलता एवं अंतर्मुखाता है। आकाश में कहीं स्वर्ग-नरक नहीं है।

सद्गुरु कबीर वेद-कितेब को केवल मनुष्यकृत ही नहीं कहते अपितु यह भी कहते हैं कि पक्षपात, भेदभाव, अंधविश्वासपूर्ण तथा प्रकृति की कारण-कार्य-व्यवस्था के विपरीत कथन से भरे होने के कारण ये धर्मग्रंथ झूठे के बाना बन गये हैं और हिन्दू-मुसलमान दोनों के धर्मगुरुओं ने लोगों को फंसाने के लिए वेद और किताब के दो जाल फैला रखे हैं और वे उनमें फंसाकर लोगों का हर प्रकार से शोषण कर रहे हैं। वे कहते हैं—“नौधा वेद कितेब है झूठे का बाना” तथा “वेद कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फंदे परु आप बिचारा।” वस्तुतः वेद-कितेब या कोई भी धर्मग्रंथ पूरे का पूरा झूठे का बाना या फंदा नहीं है क्योंकि उनमें ज्ञान-विज्ञान, धर्म-अध्यात्म परक मानवीय एकता तथा परिवार, समाज एवं आत्मकल्याणपरक बहुत सारी शाश्वत सत्य की बातें भी हैं, परंतु जब नाना मतों के धर्मगुरु उन बातों पर जोर न देकर ऐसी बातों पर जोर देते हैं जो मानव-मानव के बीच भेद उत्पन्न करने वाली होने के साथ अंधविश्वास एवं चमत्कारपूर्ण तो ही हैं साथ ही सांप्रदायिक रंग में रंगी होती हैं तब सारी किताबें धर्मग्रंथ न रहकर झूठे का बाना और फंदा बन जाती हैं। इसीलिए कबीर साहेब कहते हैं कि

किसी भी धर्मग्रंथ को अपौरुषेय, ईश्वरीय और स्वतः प्रमाण मत मानो किन्तु उन पर विचार करो। वे यह नहीं कहते कि धर्मग्रंथों को मत पढ़ो या उनकी बातों को न मानो, किन्तु वे कहते हैं कि आंख मूंदकर मत मानो। विचार करो और जो युक्तियुक्त तथा सत्य-तथ्य के अनुकूल लगे उन्हें स्वीकार करो और बाकी सबको छोड़ दो।

जो लोग अपनी विवेक एवं परख शक्ति का प्रयोग न कर किसी धर्मग्रंथ को स्वतः प्रमाण मान लेते हैं और उन पर विचार करने को नास्तिकता तथा धर्मद्रोह मानते हैं और समझते हैं कि किसी धर्मग्रंथ का पाठ कर लेने मात्र से पाप कटकर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति होती है उन लोगों को झकझोरते हुए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

हे रमैया राम, हे परख-शक्ति सम्पन्न मनुष्य! धर्मशास्त्रों की हिंसाविधायक महिमापरक बातों को सत्य मानकर तुम इसमें उलझ गये हो। कोई पुस्तक ईश्वरीय वाणी और स्वतः प्रमाण है, यह एक धोखा है, परंतु तुमने इस धोखे पर ही विश्वास कर लिया है। जैसे मछुवारा बंसी (कटिया) में चारा लगाकर मछलियों को फंसा लेता है वैसे ही ये ईश्वरीयवाणी और स्वतः प्रमाण माने गये धर्मशास्त्र तुम्हारे लिए बंसी के समान हैं, परंतु तुमने इसी पर विश्वास कर लिया है। तुम कहते हो कि ये तो वेद-शास्त्र हैं, हमारे गुरु ने हमें इन पर विश्वास करने का आदेश दिया है और कहा है कि ये तुम्हारे लिए मुक्ति का मार्ग है। कबीर साहेब कहते हैं कि किसी पुस्तक को ईश्वरीय वाणी-स्वतः प्रमाण मानकर उसके आधार पर अपनी रक्षा चाहना उसी प्रकार धोखा है जिस प्रकार कोई राजा अपने ऊपर किये गये हमला से बचने के लिए गोबर का किला उठा कर उससे अपनी रक्षा चाहे, परंतु इससे तो उसे मैदान छोड़कर भागना पड़ेगा। यथा—

भल सुमृति जहँड़ायेउ, हो रमैया राम।
 धोखे कियेउ विश्वास, हो रमैया राम॥
 सो तो है बन्सी कसी, हो रमैया राम।
 सो रे कियेहु विश्वास, हो रमैया राम॥

ई तो है वेद शास्त्र, हो रमैया राम।
 गुरु दीहल मोहि थापि, हो रमैया राम॥
 गोबर कोट उठायेउ, हो रमैया राम।
 परिहरि जैबेहु खेत, हो रमैया राम॥

(बीजक, बेलि 2)

दुनिया में अनेकों मत-मजहब-संप्रदाय हैं, सबके अपने धर्मग्रंथ हैं, महापुरुष हैं, मंत्र-नाम-जप एवं पूजा-पाठ के विधान और कर्मकाण्ड हैं। सबका यह दावा है कि हमारा ही धर्मग्रंथ ईश्वरीयवाणी है, सारे ज्ञान-विज्ञान का भंडार है और प्रलय तक इसी के नियम मान्य होंगे; हमारा महापुरुष ही मुक्तिप्रदाता हैं और हमारे पूजा-पाठ के नियम तथा मंत्र-नाम-जप सारे पाप-कर्मों को भस्म करने के लिए अचूक औषधि हैं। इतना ही नहीं ईश्वर को एक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक मानने वालों ने अपना-अपना एक मजहबी ईश्वर बना रखा है और उसके द्वारा अपने-अपने ढंग से सृष्टि करवाकर अपने-अपने स्वार्थ की बात कहलवा ली हैं। सबके अपना-अपना स्वर्ग है जहां उनके मत-मजहब वाले ही जायेंगे। सबने अपने से भिन्न मत-मजहब वालों के लिए अपने-अपने ईश्वर से नरक भी बनवा लिये हैं। सार्वभौमिक सत्य-तथ्य से किसी को कोई मतलब ही नहीं रह गया है।

इस संबंध में सद्गुरु कबीर की दृष्टि एकदम साफ है। उनका कहना है कि सभी धर्मग्रंथों-महापुरुषों को आदर दो, किन्तु सब पर विचार करो और जो सत्य लगे, जो युक्तियुक्त हो उसे स्वीकार करो, बाकी छोड़ दो। सब अपने-अपने ढंग से पूजा-पाठ, मंत्र-नाम जप करने के लिए स्वतंत्र हैं, किन्तु इनसे पाप कर्मों का नाश नहीं होगा। सबको अपने किये कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। कोई किसी के पाप को काट नहीं सकता। जिनका नाम जपकर लोग अपने कर्म-फल-भोग से छुटकारा पाना चाहते हैं उनको भी अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा। जब वे स्वयं अपने पाप कर्मों को काट नहीं पाये तब तुम्हारे पाप कर्मों को कैसे काट पायेंगे।

सृष्टि-जगत तो अनादि-अनंत है, क्योंकि सृष्टि के मूल तत्त्व जड़ और चेतन दोनों अनादि-अनंत हैं। जड़-चेतन के गुण-धर्मों, कारण-कार्य व्यवस्था एवं नियमों को न समझने के कारण सृष्टि-निर्माण के लिए एक ईश्वर की कल्पना कर ली गयी और उसके नाम पर अनेक प्रकार के धार्मिक व्यवहार शुरू कर दिया गया और लोगों को सत्य तथ्य के ज्ञान से वंचित कर दिया गया। सच तो यह है कि जब भी धर्मग्रंथों, महापुरुषों तथा मत-मजहबों का दैवीकरण किया जाता है तब उनके नाम पर मिथ्या महिमा, अंधविश्वास, चमत्कार जुड़ते चले जाते हैं, पाखण्ड और आडंबर बढ़ते जाते हैं और शुरू हो जाता है अनाचार, दुराचार, अत्याचार का सिलसिला और होने लगता है आम जनता का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक हर तरह का शोषण।

दुनिया में अनेक मत-पंथ, संप्रदाय-मजहब एवं धर्मग्रंथों का होना बुरा नहीं है, बुरा है मजहबी-सांप्रदायिक भावना का होना। हमारे महापुरुष या संप्रदाय प्रवर्तक ईश्वर, ईश्वर के अवतार, पुत्र या पैगंबर हैं, हमारा धर्मग्रंथ ईश्वरीय वाणी, अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण है और हमारा मत ईश्वर द्वारा संचालित है, इन पर विश्वास करने वाले और इनको मानने वाले ही स्वर्ग, मोक्ष या परमात्मा को पा सकते हैं, हमारा मत स्वर्ग-मोक्ष पाने का एकमात्र रास्ता है, इसके विपरीत अन्य मतों के महापुरुष सामान्य मनुष्य हैं, अन्य मतों के धर्मग्रंथ मनुष्यकृत हैं तथा हमारे मत को छोड़कर शेष सारे धर्ममत मनुष्यों द्वारा चलाये गये हैं, इसलिए नरक के रास्ते हैं, यह भावना ही मजहबी भावना है। इसी भावना के कारण विभिन्न मत-मजहबों के अनुयायियों में परस्पर कटुता, द्वेष, वैमनस्य एवं मारामारी है। इस भावना से ग्रस्त लोग न तो दूसरे मत के महापुरुषों को आदर दे पाते हैं और न उनकी बातों को समझ पाते हैं। वे अन्य लोगों की भावनाओं को समझने का प्रयास नहीं करते। अपने से भिन्न विचार रखने वालों को नास्तिक, काफिर, म्लेच्छ एतदर्थ नरकगामी कहने में देर नहीं

लगाते। वे यह समझने का प्रयास नहीं करते कि दुनिया के सभी महापुरुषों ने अपने-अपने देश-काल के परिप्रेक्ष्य में समाज को सही दिशा देने के लिए अपने-अपने ढंग से अपनी बातें कही हैं। कहने के तरीके में अंतर होने से सत्य तत्त्व एवं परमतत्त्व के स्वरूप में अंतर में नहीं हो जाता। वह तो वैसा ही रहता है। सद्गुरु कबीर ने इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कितनी उदारतापूर्वक कहा है—

पण्डित देखहु हृदय बिचारी, को पुरुषा को नारी।
सहज समाना घट घट बोले, वाके चरित अनूपा।
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा।
तैं मैं क्या करसी नर बौरै, क्या मेरा क्या तेरा।
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहुधौं काहि निहोरा।
वेद पुराण कितेब कुराना, नाना भांति बखाना।
हिन्दू तुरुक जैनि औ योगी, ये कल काहु न जाना।
छौ दर्शन में जो परवाना, तासु नाम मनमाना।
कहहिं कबीर हमहिं पै बौरै, ई सब खलक सयाना।

हे पण्डितो! हृदय में विचारकर देखो कि कौन पुरुष है और कौन नारी है। स्त्री-पुरुष के शरीर के कुछ अंगों की बनावट में अंतर है, किन्तु दोनों का शरीर एक समान जड़ तत्त्वों से निर्मित है और दोनों के अन्दर सहज रूप से एक समान चेतन का निवास है। उस चेतन तत्त्व को क्या नाम लेकर पुकारोगे, क्योंकि उसका कोई बाहरी रूप-रंग तो है नहीं। इसी प्रकार परमतत्त्व, सत्यतत्त्व एक समान है, उसमें कोई घट-बढ़ नहीं फिर अरे पगले! सत्यतत्त्व, परमतत्त्व, स्वर्ग, मोक्ष आदि को लेकर क्या अहंकार कर रहे हो कि हम दीनदार-आस्तिक हैं और तुम बेदीन नास्तिक हो। हमारा मत-संप्रदाय स्वर्ग के रास्ते हैं और तुम्हारा नरक के रास्ते हैं। यहां क्या मेरा है और क्या तुम्हारा है। सत्य या परम तत्त्व को तुम काट-काटकर क्या देख रहे हो? राम, खुदा, शक्ति, शिव आदि सब एक चेतन सत्ता के नाम हैं और वह चेतन सब में

एक समान है। फिर इनमें किस एक को बड़ा मानकर उसकी पूजा-प्रार्थना की जाये और बाकी को छोटा मानकर छोड़ दिया जाये! वेद, पुराण, कितेब, कुरान आदि धर्मग्रंथों में उसी एक चेतन सत्ता का वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है, परन्तु वर्णन के तरीके अलग-अलग होने से मूल तत्त्व में अंतर नहीं हो जायेगा। वह तो वैसा का वैसा ही रहेगा। परन्तु हिन्दू, तुरुक, जैनी, योगी आदि संप्रदायों के कट्टर अनुयायी अनेकता में एकता की इस मधुरता-सुंदरता को नहीं जानते। अनेक संप्रदायों के गुरुओं ने अपने अनुगामियों-शिष्यों को जो कुछ बता दिया है उसी को उन लोगों ने प्रामाणिक मानकर शिरोधार्य कर लिया है। उसके आगे वे कुछ विचार नहीं करना चाहते। अपनी-अपनी सांप्रदायिक मान्यताओं-भावनाओं को सच मानकर वे स्वयं को समझदार मानते हैं और जो सारी सांप्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठकर अनेकता में एकता-समता का मार्ग बताते हैं, उन हम-जैसों को पागल कहते हैं।

सद्गुरु कबीर और कहते हैं—अपने-अपने संप्रदाय, मत, मजहब की बातों को सभी ने सच मान लिया है उसके आगे वे कुछ विचार करने को तैयार नहीं हैं। इसलिए हरि अर्थात् सत्य तत्त्व के ज्ञान से ये लोग दूर ही रह जाते हैं। ऐसे लोगों में से कोई उसे समझ नहीं पाता। हमारा मत-मजहब, संप्रदाय स्वर्ग-मोक्ष का रास्ता और दूसरों का मत-मजहब, संप्रदाय नरक का रास्ता, हमारे महापुरुष, गुरु, मत प्रवर्तक ईश्वर, ईश्वर के अवतार, पुत्र, पैगंबर तथा अन्य संप्रदायों के महापुरुष-गुरु साधारण मनुष्य, हमारा धर्मग्रंथ अपौरुषेय, ईश्वरीय-वाणी तथा स्वतः प्रमाण है किन्तु दूसरों के धर्मग्रंथ मनुष्यकृत हैं और इसीलिए परतः प्रमाण हैं, इस पक्ष और अपक्ष में पड़कर संसार के सारे लोग भूल-भटक गये हैं। जो मत-मजहब, संप्रदाय, महापुरुष, धर्मग्रंथ आदि के पक्षपातों से ऊपर उठकर निष्पक्ष होकर चिंतन करता है वही सत्य तत्त्व को समझता है। ऐसा करने वाला ही समझदार है, सच्चा संत है।

अपने-अपने शिरों का, सबन लीन्ह है मान।
हरि की बात दूरन्तरी, परी न काहू जान॥
पछापछी के कारणे, सब जग रहा भुलान।
निर्पक्ष होय के हरि भजे, सोई सन्त सुजान॥

किसी भी मत-मजहब, संप्रदाय को ईश्वर द्वारा प्रवर्तित तथा स्वर्ग-मोक्ष, परमात्मा-ईश्वर तक पहुंचने का एकमात्र रास्ता मान लेने पर, किसी महापुरुष को ईश्वर या ईश्वर के अवतार, पुत्र, पैगंबर मान लेने पर और किसी धर्मग्रंथ को ईश्वरीय वाणी, स्वतः प्रमाण मान लेने पर उनके प्रति दृढ़ आस्था, श्रद्धा तो हो जाती है, परंतु सत्य के अनुसंधान का रास्ता बंद हो जाता है, साथ-साथ एक प्रकार की धार्मिक-सांप्रदायिक कट्टरता पैदा हो जाती है जो दूसरों की अच्छाइयों को समझने नहीं देती, क्योंकि फिर सारी अच्छाइयां अपने मत-मजहब, महापुरुष, धर्मग्रंथ में ही दिखाई पड़ने लगती हैं और आदमी दूसरों की अच्छाइयों से आंखें फेर लेता है। आदमी पूरा का पूरा कूपमंडूक बनकर रह जाता है।

सद्गुरु कबीर का रास्ता एकदम अलग है। वे सब तरफ से निष्पक्ष और तटस्थ हैं। उनका तो साफ कथन है—न काहू से दोस्ती, न काहू से वैर। सत्य कहीं का हो उनका अपना है किन्तु झूठ कहीं और किसी का भी हो, वे सिरे से नकार देते हैं। वे तो साफ शब्दों में कहते हैं—

सब काहू का लीजिये, सांचा शब्द निहार।

पक्षपात न कीजिये, कहैं कबीर विचार॥

आवश्यकता है निष्पक्ष होकर सभी महापुरुषों, मत-मजहब, संप्रदायों तथा धर्मग्रंथों को आदर देने की और विनम्रता तथा उदारतापूर्वक सबसे सार-सत्य ग्रहण करने की। इसी रास्ते पर चलकर हम सत्य तत्त्व, परमतत्त्व तथा मानवता को समझ सकेंगे और मानवमात्र के साथ प्रेम, समता एवं भाईचारा का व्यवहार करते हुए विश्वकल्याण तथा आत्मकल्याण की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे। और यही सद्गुरु कबीर का संदेश है।

—धर्मेन्द्र दास

कबिरा खड़ा बाजार में

लेखक—श्री शिवकुमार मिश्र

कबीर पर की जाने वाली हमारी वर्तमान चर्चा के केन्द्र में कबीर अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ हमारी चिंता से मुखतिब होते हैं। जिस सांस्कृतिक चेतना को हम उनकी रचनाओं में मूर्त होते हुए देखते हैं, वह संस्कृति, भारतीय संस्कृति की किसी घिसी-पिटी धारणा का तिरस्कार करती है और भारतीय संस्कृति की विद्रोही चेतना के रूप में हमें अपनी पहचान कराती है। इस भारतीय संस्कृति की अपनी छवि को लेकर मतैक्य नहीं है, अतएव इसके पहले कि हम कबीर को भारतीय संस्कृति की विद्रोही चेतना का प्रतिनिधि मानते हुए उनकी सोच और उस सांचे से गुजर कर सामने आने वाले उनके कृतित्व पर ध्यान दें, उनके बारे में कोई चर्चा करें, हम इस मूलवर्ती सवाल से प्रारम्भ में ही निपट लेना चाहते हैं कि आखिर भारतीय संस्कृति है क्या?

जाहिर है कि यह एक ऐसा सवाल है, जिससे आंखें न मिला पाने या उसके सही जवाब को न पचा पाने का ही परिणाम है कि आज शताब्दी के जिस बिन्दु पर हम खड़े हैं समस्याओं का एक विराट जाल हमें आबद्ध किये हैं, हमारा सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन क्षतिग्रस्त हो रहा है तथा एक राष्ट्र के रूप में हमारे अपने अस्तित्व पर भी प्रश्नचिन्ह लगे हुए हैं। सवाल है कि जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, क्या वह कोई जड़ या स्थिर वस्तु है, जिसका एक सनातन तथा शाश्वत रूप है अथवा वह एक गतिशील वास्तविकता है, जिसके एक-एक चरण का और इन चरणों में होने वाले उसके रूपांतरणों का एक लम्बा और जीवित इतिहास है। कहना न होगा कि इन सवालों से निपटे बिना और सच्चे दिल तथा सही दिमाग से उनका उत्तर पाये और स्वीकार किये बिना, भारत के सांस्कृतिक जीवन में कबीर जैसे घर फूंक तमाशा देखने वाले फक्कड़ संत के आविर्भाव की युगांतरकारी घटना को उसके पूरे महत्त्व

तथा अर्थ के साथ नहीं समझा जा सकता।

यह तथ्य इतिहास सिद्ध है कि भारत में आर्यों से पूर्व भी एक अत्यंत समुन्नत सभ्यता तथा संस्कृति विद्यमान थी, जिसके न केवल तमाम भग्नावशेष हमें प्राप्त होते हैं, परवर्ती संस्कृति पर जिसके गहरे निशान भी विद्यमान हैं। इस पूर्ववर्ती संस्कृति की दूह पर ही भारत में वैदिक आर्य संस्कृति विकसित और पुष्ट होती है, अपने को जिससे जोड़ते हुए उसका उत्तराधिकारी कहने में हमें अतिशय गर्व तथा हर्ष का अनुभव होता है। इसके उपरान्त वैदिक संस्कृति के समानांतर बौद्ध और जैन अपनी विचार सम्पदा को लेकर इस चली आ रही सांस्कृतिक पूंजी में इजाफा करते हैं। उनकी बात जाने भी दें, तो हर्षवर्धन के समय तक भारत में बाहर से न जाने कितनी जातियों का आगमन होता है, जिनमें से कुछ विजेता बनकर शासक जातियों के रूप में हम पर शासन भी करती है। भारत में बाहर से आने वाली ये तमाम जातियां भारत में ही रहती और बसती हैं और कालांतर में भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की धारा से इतना घुल-मिल जाती हैं कि उन्हें अलग से पहचानना तक मुश्किल हो जाता है। ऐसा नहीं है कि चले आते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवाह ने इन्हें ही आत्मसात किया हो, इन्होंने भी अपने विशिष्ट आचार-विचारों का रंग क्रमागत सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रवाह पर छोड़ा और उसे एक नया रूप भी दिया है।

अतएव, हर्षवर्धन तक भारतीय संस्कृति का जो रूप सामने आया, सवाल उठता है कि उसे कौन-सा नाम दिया जाये? क्या उसे विशुद्ध वैदिक आर्य संस्कृति कहा जाये, अथवा बौद्ध या जैन संस्कृति कहकर पुकारा जाये, अथवा यह माना जाये कि वह अनेक प्रकार की आर्य और आर्येतर जातियों तथा वैदिक-अवैदिक मतों के समागम तथा सम्मिलित प्रयासों से बनी-छनी एक ऐसी संस्कृति है, जो किसी जाति, धर्ममत या नस्ल-

विशेष की चीज न रहकर उनकी समष्टि के प्रतिफल के रूप में जानी-समझी जा सकती है। हम इसे हिन्दू संस्कृति भी नहीं कह सकते; क्योंकि जैसा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है, मुसलमानों के आगमन से पहले हिन्दू शब्द भारत में रहने वालों के लिए एक सामान्य संज्ञा कभी नहीं रहा। वे कहते हैं :

इस्लाम के आने के पहले इस विशाल जनसमूह का एक नाम तक नहीं था। अब उसका नाम हिन्दू पड़ा। हिन्दू अर्थात् भारतीय अर्थात् गैर-इस्लामी मत। स्पष्ट ही गैर इस्लामी मत में कई तरह के मत थे—कुछ ब्रह्मवादी थे, कुछ कर्मकाण्डी थे, कुछ शैव थे, कुछ वैष्णव थे, कुछ शाक्त थे, कुछ स्मार्त थे, और भी न जाने क्या-क्या थे। (हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, 180-81)

इस्लामी धर्ममत से टक्कर लेने के हेतु शास्त्रों की छानबीन करते हुए एक ऐसे सर्वसम्मत मत को निकालने का प्रयास किया गया, जिसके संरक्षण में गैर-इस्लामी मत के भारतीय खड़े हो सकें और अपने को सुरक्षित अनुभव कर सकें। गोकि यह प्रयास सर्ववाद सम्मत नहीं रहा फिर भी एक नये आचार प्रवण धर्म का रूप सामने जरूर आया।

अतएव, इतिहास की रोशनी में इस तथ्य को मान लेने में हमें हिचक नहीं होनी चाहिए कि हर्षवर्धन के समय तक भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में अनेक प्रकार के लोगों और जातियों के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान की एक जीवित क्रिया चलती रही और यद्यपि भारतीय सांस्कृतिक जीवन की प्रधान धारा में बाहर से आई हुई अनेक जातियों, कबीलों, नस्लों और घुमक्कड़, खानाबदोशों के झुण्ड अपने आचार-विचारों को लिये दिये घुल-मिल गये, फिर भी उन्होंने चले आते हुए सांस्कृतिक प्रवाह को ज्यों-का-त्यों नहीं रहने दिया, उसे अपने रंग से भी रंगा। फलतः भारतीय सांस्कृतिक जीवन की एक ऐसी छवि उभरी जो यहां पर रहने वाली किसी एक खास जाति की देन न होकर सबके सम्मिलित प्रयासों का परिणाम थी। आचार्य द्विवेदी ने ठीक ही कहा है—

जिसे हम हिन्दू रीति-नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का मिश्रण है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है, मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा। वह गंगा की अबाधित अनाहत धारा की भांति सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है।

(अशोक के फूल)

हर्षवर्धन के उपरान्त भारत का इतिहास प्रारम्भ में आक्रमणकारी आक्रांताओं और लुटेरों के रूप में मुसलमानों के आक्रमणों का, तदुपरान्त उनके विजेताओं के रूप में देश के शासनकर्ता बनने का इतिहास है। बाहरी आक्रमणों का सामना पहले भी देश ने कई बार किया था। किन्तु, जैसा कि हम कह चुके हैं, वे आक्रमणकारी जातियां मूलतः कबीलाई, खानाबदोश या आदिम जातियां थीं, जिनका न तो कोई दृढ़ सामाजिक संगठन था और न ही कोई सुव्यवस्थित और संघटित धर्म तथा संस्कृति। अपनी प्रकृति में अत्यन्त लचीली तथा पर्याप्त समुन्नत और पुष्ट भारतीय संस्कृति तथा समाज व्यवस्था ने न केवल इन्हें आत्मसात किया—बल्कि उनके देवी-देवताओं तथा आचार-विचारों को भी अपना बना लिया।

किन्तु इस बार के आक्रमणकारी दूसरी ही धातु के बने हुए थे। वे दूसरे ही हवा-पानी में पले हुए थे। वे केवल भारत की भौगोलिक विजय अथवा भारत की अपार संपत्ति लूटने के इरादे से ही घर से न निकले थे, उनका लक्ष्य भारत में मुसलमानी मजहब तथा एक ऐसे इस्लामिक राज्य की स्थापना करना था जैसा कि और मुस्लिम देशों में था। आबिद हुसैन ने ठीक ही लिखा है:

अगर यूनानियों की तरह, जो दूसरी शती ईस्वी में बख्तर से आये थे, अपने और अपनी संस्कृति के उद्गम स्थान से बहुत अरसे तक उनका नाता टूटा रहता अथवा अगर उनकी संस्कृति सीरियन और हूणों की तरह आदिम होती, तो वे हिन्दू समाज में घुलमिल कर

एकात्म हो जाते। लेकिन पहले तो वे एक समुन्नत अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति के प्रतिनिधि थे, दूसरे वे भारत से बाहर उस संस्कृति के केन्द्रों से, इनमें इस्लामी जगत का राजनीतिक केन्द्र बगदाद भी शामिल था, जिसका महत्त्व आज नाम मात्र को रह गया है, बराबर सम्पर्क बनाये रहे। इन कारणों से उन्हें पूरी तरह भारतीय होने में काफी समय लगा। (आबिद हुसैन, राष्ट्रीय संस्कृति, 44)

और भी कुछ महत्त्वपूर्ण कारण थे, जिन्होंने मुसलमानों और उनके मजहब की पटरी भारतीय धर्म मतों से न बैठने दी। इस्लामी धर्ममत और इस्लामी संस्कृति को आत्मसात करना तो दूर की बात, भारतीय मनीषियों के समक्ष तात्कालिक सवाल तो इस बात का खड़ा हो गया कि मुसलमानों की उद्दीप्त धर्म भावना, दृढ़तर तथा सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन एवं मानव जाति की समानता के उदार इस्लामी आशय से किस प्रकार अपने धर्म मत, अपने आचार-विचारों, अपनी व्यवस्था तथा अपनी रीति-नीति की रक्षा करे। अविजये और अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली भारतीय जाति व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। भारतीय जनमानस ही नहीं, समूचा भारतीय वातावरण पहली बार बुरी तरह विक्षुब्ध हो उठा था। इस्लाम कृपाण के बल पर भी और समानता के अपने उदार आश्वासन के बल पर भी, गुहार-गुहार कर उन आचार-भ्रष्ट तथा आश्रम-भ्रष्ट जातियों को, जो न तो हिन्दू थीं न मुसलमान अपने संरक्षण में बुला रहा था।

अब तक वर्णाश्रम व्यवस्था का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। आचार-भ्रष्ट व्यक्ति समाज से अलग कर दिये जाते थे और वे एक नई जाति की रचना कर लेते थे। इस प्रकार सैकड़ों जातियां और उपजातियां भ्रष्ट होते रहने पर भी वर्णाश्रम व्यवस्था एक प्रकार से चलती ही जा रही थी। अब सामने एक प्रतिद्वन्द्वी समाज था, जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जाति को अंगीकार करने के लिए बद्धपरिकर था। उसकी एकमात्र शर्त यह थी कि वह उसके विशेष प्रकार के धर्म मत को स्वीकार कर

ले। समाज से दण्ड पाने वाला बहिष्कृत व्यक्ति अब असहाय नहीं था। इच्छा करते ही वह एक सुसंगठित समाज का सहारा पा सकता था। (हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, 183)

आचार तथा आश्रम-भ्रष्ट जातियों के अतिरिक्त अंत्यज कही जाने वाली जातियां भी थीं, जो यद्यपि भारतीय आचार तथा आश्रम व्यवस्था का अंग थीं, किन्तु अंत्यज होने के नाते जिनकी सामाजिक स्थिति तथा मर्यादा हीन से हीनतर तथा विषम से विषमतर होती जा रही थी। इस्लाम द्वारा दिया गया समानता का आश्वासन उन्हें भी अपनी ओर खींच रहा था।

जिस समय भारत के राजनीतिक ही नहीं, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षितिज पर भी, चुनौतियों के काले स्याह बादल मंडरा रहे थे, सारा देश उद्वेलित था, आगे की राह ढूँढ़ने को व्याकुल था, एक अन्य युगांतरकारी घटना घटित हुई, जिसने देश के कोटि-कोटि संतप्त जनों को आगे की राह दिखा दी। यह युगांतरकारी घटना थी, उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का उदय। ग्रियर्सन ने लिखा है, बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। यह भक्ति का आन्दोलन था।

हमारा इरादा यहां भक्ति आन्दोलन के समूचे इतिहास को प्रस्तुत करना नहीं है। भक्ति के इस आन्दोलन के बारे में हम एक अलग अध्याय में काफी कुछ कह चुके हैं। यहां मात्र इस तथ्य को ही रेखांकित करना चाहते हैं कि एक ऐसे समय में जबकि समूचा उत्तर भारत एक ओर इस्लाम और इस्लामी शासकों के मजहबी आवेश से, और दूसरी ओर शास्त्र और वेदसम्मत आचारों की कड़ी जकड़बंदी के फलस्वरूप असहनीय प्रकार की घुटन अनुभव कर रहा था, देश के कोटि-कोटि सामान्य जन इस्लामी प्रभाव के फलस्वरूप रूढ़ से रूढ़तर होते हुए भारतीय धर्म मतों एवं प्रखर से प्रखरतर होती हुई इस्लाम की उद्दीप्त धर्म भावना से त्रस्त, आतंकित और पीड़ित थे, सच्ची धर्म भावना के हास के फलस्वरूप चमत्कारी साधुओं, सिद्धों और

वामाचरियों के द्वारा उन्हें गुमराह किया जा रहा था, सामान्य हिन्दू और मुसलमान जन एक-दूसरे के निकट आने और एक-दूसरे को पहचानने को समुत्सुक थे, दक्षिण से आने वाली भक्ति-आन्दोलन की धारा ने दीर्घकाल से तप्त उनके मन-प्राणों को भीतर तक सींच दिया। सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन के अवरुद्ध प्रवाह को भक्ति-आन्दोलन की वेगवती धारा ने धक्का देकर गतिशील कर दिया। जो समाज टूटने और बिखर जाने के लिए जैसे कगार पर खड़ा था, वह एक नयी शक्ति पा गया।

उत्तर में आने वाली भक्ति-आंदोलन की यह धारा कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। शताब्दियों पहले दक्षिण में सर्वप्रथम आलवारों और आडवारों ने चले आते हुए शास्त्रसम्मत विधि-विधानों को तोड़ते हुए शिव और विष्णु भक्ति का रास्ता सबके सामने सुलभ किया। बाद को रामानुज और उनकी शिष्य परम्परा के रामानन्द ने एक कदम और आगे बढ़कर परम्परागत वैष्णव धर्म की व्यवस्था पर चोट करते हुए भगवद्भक्ति का अधिकारी न केवल शूद्रों और चाण्डालों को माना, वरन मुसलमानों को भी अपनी शिष्य-परम्परा में स्वीकार करते हुए एक सामान्य मानव धर्म के लिए रास्ता साफ कर दिया। रामानन्द इस सहज मानव धर्म को उत्तर भारत तक लाये और उत्तर भारत को ही उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र भी बनाया। कहां तो रास्ता ही नजर नहीं आ रहा था, और कहां रास्ते ही रास्ते खुल पड़े। फिर क्या था? 'जाति पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' शूद्रों, अंत्यजों और मुसलमानों के बीच से, रूढ़ियों के सड़े-गले जम्बाल जाल को काटते हुए, भक्ति के सहज निर्मल प्रवाह में अवगाहन करती हुई और उपेक्षितों, पीड़ितों तथा पद-दलितों की जनम-जनम की आकांक्षा को फलवती करते हुए संतों की, अंत्यज, शूद्र और मुसलमान संतों की, ऐसी पंक्ति की पंक्ति सामने आई, अब तक के सांस्कृतिक जीवन के इतिहास में जिसकी मिसाल नहीं है।

यह भक्ति-आन्दोलन, सच पूछा जाये, तो अपने समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक

परिस्थितियों की अनिवार्य देन था। वह युग जीवन की ऐतिहासिक मांग बनकर सामने आया था। इस तथ्य का अनुमान महज इस बात से लगाया जा सकता है कि इसने न केवल अपने समय की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जड़ता को तोड़ा, चली आती हुई सांस्कृतिक जीवन की धारा के साथ विजेताओं की नयी संस्कृति को घुलाते-मिलाते हुए पहली बार जाति, धर्म, वर्ण आदि से निरपेक्ष एक मानव धर्म तथा एक मानव संस्कृति की परिकल्पना सामने रखी। इसने शताब्दियों से कुंठित और अपमानित देश के करोड़ों-करोड़ों साधारण जनों के लिए उनकी सामाजिक मुक्ति तथा आध्यात्मिक परितृप्ति के द्वार भी उन्मुक्त कर दिये, समाज तथा धर्म के ठेकेदारों ने जिन्हें उनके लिए कब का बंद कर रखा था। इस आधार पर यदि यह कहा जाये कि एक स्तर पर यह भक्ति-आन्दोलन रुढ़िग्रस्त धर्म तथा उसके द्वारा अभिशप्त एक अनैतिक और अमानवीय समाज-व्यवस्था के प्रति सामान्य जन के सात्त्विक रोष तथा उसकी दुर्दम जिजीविषा की भावात्मक अभिव्यक्ति था, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। निम्नवर्गीय साधारण जन की व्यथा से उद्भूत इस भक्ति-आंदोलन पर टिप्पणी करते हुए गजानन माधव मुक्तिबोध कहते हैं :

भक्ति-आंदोलन का जन-साधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ, उतना किसी अन्य आंदोलन का नहीं। पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किये। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किये। कबीर, रैदास, नाभा, सिंपी, सेना नाई आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज बुलंद की। समाज के न्यस्त स्वार्थवादी वर्ग के विरुद्ध नया विचारवाद अवश्यंभावी था। वह हुआ। तकलीफ हुई, लेकिन एक बात हो गयी। (नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, 88)

भक्ति-आंदोलन के ज्वार में न केवल उच्च वर्गों का अहंकार, वर्ण-दम्भ तथा समाज, धर्म और नीति सम्बन्धी उनकी जर्जर मान्यताएं तिनके के समान ऊब

डूब करती दिखायी दीं, सामान्य जन को वह आत्मविश्वास भी प्राप्त हुआ, जिसके सहारे वह सम्मानपूर्ण जिंदगी बिताते हुए अपने धार्मिक तथा आध्यात्मिक मानस को संतोष दे सके।

इतिहास के देशी-विदेशी समस्त विद्वानों ने इस भक्ति-आंदोलन के ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक प्रदेय को युगांतरकारी माना है। बहुतेकों ने इसे सांस्कृतिक नवजागरण की संज्ञा दी है और इस नवजागरण के नेता रामानन्द को एक क्रांतद्रष्टा, युगप्रवर्तक व्यक्ति घोषित किया है। रामानन्द निस्संदेह उत्तर भारत के सांस्कृतिक नवजागरण के अग्रदूत थे। गौतम बुद्ध के बाद कदाचित ही किसी धार्मिक तथा सांस्कृतिक नेता को अनुयायियों की इतनी विशाल संख्या के नेतृत्व और मार्गदर्शन का गौरव मिला हो। देश के बिखरते तथा विषैले होते सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन को उन्होंने संजीवनी प्रदान की। जातिपांति, वर्ग और वर्ण की दीवालें ढहाते हुए उन्होंने भक्ति का पथ सबके लिए सुगम कर दिया और इस प्रकार समाज तथा संस्कृति की मृत होती हुई बौद्धिक तथा भावात्मक चेतना को नया जीवन प्रदान किया। सवर्ण, असवर्ण, शूद्र, चाण्डाल और मुसलमान, उन्होंने सब को गले लगाया और राम नाम का मंत्र देते हुए सबको समान निष्ठा तथा समान लक्ष्य के एक सूत्र में बांध दिया।

राम नाम के उनके मंत्र ने सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति के लिए पथ प्रशस्त किया। उनकी शिष्य परम्परा में कबीर भी रहे और तुलसी भी। सगुण और निर्गुण की जिस लहर ने रामानन्द में अपना स्रोत प्राप्त किया, वह उत्तर भारत में ही नहीं, पूर्व और पश्चिम में भी शतधा धाराओं में प्रवाहित हुई। इन सारे तथ्यों के सन्दर्भ में यदि भक्ति-आन्दोलन के युगांतरकारी महत्त्व का आख्यान किया गया है तो यह स्वाभाविक ही है। वह एक ऐसी प्राणशक्ति के रूप में उभरा था, जिसने समूचे देश को जैसे फिर से अपने पैरों पर खड़ा कर दिया। एक नये सांस्कृतिक प्रयाण का जो रास्ता उसने खोला, और अधिक स्पष्ट कहें, तो वर्ण, वर्ण

और धर्मनिरपेक्ष जिस एक मानव संस्कृति की संभावनाओं की ओर उसने इशारा किया, उन बातों के सन्दर्भ में हमें उस बुनियादी सवाल का जवाब मिल जाना चाहिए, जिसे हमने प्रारम्भ में उठाया था। वह जवाब और कुछ नहीं, यही है कि भारतीय संस्कृति सदैव एक गतिशील वास्तविकता का परिचायक रही है। सदैव नये-नये रूपों में वह सामने आती रही है, और नई प्रेरणाओं से मंडित होकर भारतीय जीवन और जनमानस को नयी शक्ति देती रही है।

हम अभी ऊपर कह चुके हैं कि रामानन्द ने राम नाम का जो बीज मंत्र शिष्यों को दिया, वह दो आयामों पर प्रस्फुटित हुआ। कबीर के बारे में लिखते हुए आचार्य द्विवेदी इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि—

पौराणिक अवतारों को केन्द्र में करके सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण परब्रह्म, जो योगियों का ध्येय था, उसे केन्द्र करके निर्गुण प्रेम भक्ति की साधना के रूप में। पहली साधना ने हिन्दू जाति के बाह्याचार की शुष्कता को आंतरिक प्रेम से सींचकर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया—दूसरी ने विद्रोह का। एक ने शास्त्र का सहारा लिया—दूसरी ने अनुभव का। एक ने श्रद्धा को पथ प्रदर्शक माना—दूसरी ने ज्ञान को। एक ने सगुण भगवान को अपनाया दूसरी ने निर्गुण भगवान को। पर दोनों का ही मार्ग प्रेम था। सूखा ज्ञान दोनों को ही अप्रिय था। केवल बाह्याचार दोनों को ही सम्मत नहीं थे। आंतरिक प्रेम निवेदन दोनों का ही अभीष्ट था। अहेतुक भक्ति दोनों को ही काम्य थी। बिना शर्त भगवान के समक्ष आत्मसमर्पण दोनों को ही प्रिय थे।

(हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, 183)

समझौते का रास्ता छोड़कर विद्रोह का रास्ता अपनाते हुए निर्गुण भक्ति की जो धारा भक्ति आन्दोलन की स्रोतस्विनी से फूटी, कबीर उसकी सबसे ऊंची लहर के साथ सामने आये। समझौता उनकी प्रकृति में नहीं था। विद्रोह और क्रान्ति की ज्वाला उनकी रग-रग में

व्याप्त थी। सिर पर कफन बांधकर, अपना घर फूंककर वे अलख जगाने निकले थे। उन्हें समझौतापरस्तों की नहीं, अपना घर फूंककर साथ चलने वालों की जरूरत थी। वे लुकाठी लिए सरे बाजार गुहार लगा रहे थे :

कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।

जो घर जारे आपना चले हमारे साथ॥

कबीर के अंतःकरण से फूटे इन शब्दों ने क्या परिणति पाई, मानव समता तथा एक मानव धर्म का जो सपना उन्होंने देखा था, और जिसे अपनी विरासत के रूप में उन्होंने युग को दिया युग उसे साकार कर पाया या नहीं, भक्ति-आंदोलन की कबीर द्वारा प्रवर्तित क्रान्तिकारी तथा विद्रोही धारा आगे भी उतनी ही प्रखर तथा विद्रोही बनी रही या नहीं, फिलहाल इन बातों के विस्तार में हम नहीं जाना चाहते। संप्रति, हमारा निवेदन यही है कि भारतीय संस्कृति की क्रान्तिकारी चेतना के अग्रदूत बनकर कबीर अपने समय में प्रकट हुए। रामानन्द से प्राप्त राम नाम के बीज मंत्र को उसकी समूची क्रान्तिकारी व्यंजनाओं के साथ अपनी प्रखर तथा अनुभव सिद्ध वाणी से उन्होंने सातों द्वीपों तथा नवों खण्डों तक गुंजा दिया, इसमें कोई भी संदेह नहीं :

भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानन्द।

परगट किया कबीर ने सप्तद्वीप नवखण्ड॥

कबीर की चर्चा करते हुए प्रायः उन्हें विद्रोही कवि, क्रान्तिकारी द्रष्टा, समाज-सुधारक, मनीषी, रहस्यवादी साधक और संत, इस प्रकार के नाना रूपों में स्मरण किया जाता है। कोई उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकता के विधायक के रूप में, कोई रूढ़िभंजक के रूप में, और कोई सामाजिक नेता के रूप में देखता है। किसी को उनके ये सारे रूप गौण मालूम होते हैं और वह उन्हें एक रहस्यवादी आध्यात्मिक आस्था वाले संत के रूप में ही पहचानने पर बल देता है। हमारी समझ में सवाल इन तमाम रूपों में से किसी एक या अनेक के साथ कबीर को जोड़कर देखने का नहीं है, सवाल तत्कालीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश के भीतर उन सन्दर्भों को पहचानने और उन्हें महत्त्व देने का है, जो कबीर को

एक ऐसी ऊंचाई दे सके, जो शताब्दियों बाद आज भी कायम है।

कबीर सचमुच विद्रोही और क्रान्तिकारी थे, किन्तु हमारे लिए महत्त्वपूर्ण यह जानना है कि सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के वे कौन से आयाम थे, जिन्होंने कबीर के विद्रोह और उनकी क्रान्ति निष्ठा को उनके व्यक्तित्व की बुनियादी विशेषता के रूप में जीवित रखा। कालांतर में उन्हें किसी प्रकार की समझौतापरस्ती, किसी प्रकार के लुभावने आश्रय, किसी के अहेतुक संरक्षण में नहीं आने दिया, उनके हृदय में जलती विद्रोह की उस ज्वाला को जिलाए रखा जिसके नाते ही कबीर कबीर बने रहे और आजीवन सुविधाभोगियों, सत्ताधारियों तथा समाज और धर्म के प्रभुओं की आंख का कांटा बने रहे। कबीर को जिन-जिन रूपों में भी याद किया जाता है, और महत्त्व दिया जाता है, वे सब वह थे, किन्तु कहीं वे उन सबसे बढ़कर भी थे, बेमिसाल थे, कथनी में भी और करनी में भी। जरूरत उनकी इस विशिष्टता को पहचानने और रेखांकित करने की है।

समाज सुधारक, भक्त, संत, हिन्दू-मुस्लिम एकता के हामी और मानव प्रेम के अभिलाषी इस देश में कोई कम नहीं हुए हैं। बहुत पुराना और बहुत विशाल देश है यह। सदियों से महान मनीषी, संत, पीर, फकीर, औलिये यहां होते रहे हैं। भारतीय जनमानस उन्हें स्वीकार भी करता रहा है, पूजता और प्रतिष्ठा देता रहा है, किन्तु गलत न होगा, यदि कहा जाये, कि कबीर इनकी परम्परा के होते हुए भी इनसे भिन्न थे, इनसे जुड़े रहने पर भी इनसे न्यारे थे। तभी तो जहां अन्य तमाम मनीषी, भक्त और संत, साधक और सिद्ध जनता के कंधों से होते हुए समाज और शासन के महाप्रभुओं के कंधों पर जा बैठे, व्यवस्था द्वारा पचा लिये गये, उनके द्वारा पूजे और सराहे गये, उसके द्वारा इस्तेमाल हुए, उसकी बोली भी बोलने लगे, कबीर एक अपवाद हैं कि समाज, धर्म तथा शासन के महाप्रभु, उनके कर्णधार जिनके पास फटक तक न सके, उन्हें पचाना और अपने हित में इस्तेमाल करना तो दूर की बात। यह दूसरे संतों

और मनीषियों की अवमानना नहीं, एक वस्तुगत सच्चाई है जिसे हमें स्वीकार करना चाहिए। कबीर ने जीवन भर जो कुछ प्रचारा और कहा उसे नीचे उतार पाने तक का बूता समाज, शासन तथा धर्म के मसीहाओं के पास न तब था और न आज है। इस प्रकार कबीर शासन तथा समाज के महाप्रभुओं की खोखली कथनी और करनी को निर्ममता के साथ उगाजर कर देते हैं, उन्हें उनकी सही शकल में हमारे सामने पेश कर देते हैं।

कबीर के सच्चे अनुयायियों की संख्या उनके अपने समय में भी उंगलियों पर गिनी जाने लायक थी, और वैसा ही आज भी है। एक भीड़ कबीरपंथ के नाम से उनके मरने के बाद जरूर उनके पीछे खड़ी हो गयी थी और आज तक चली आ रही है, किन्तु उसकी वास्तविकता भी हम जानते हैं। सचमुच कबीर की शर्तों पर कबीर के साथ चलना मामूली बात नहीं है, उनका नाम लेकर पंथ खड़े करना कितनी अहमियत रखता है, इसे स्पष्ट करना जरूरी नहीं है।

सब कुछ हमारी आंखों के सामने साफ है। कबीर जीवन भर गुहार लगा-लगा कर थक गये कि कोई माई का लाल तो उनके साथ चले, किन्तु शर्त इतनी कठोर थी कि किसी का हौसला नहीं हुआ कि उसे पूरा करते हुए वह उनके साथ आये और आगे बढ़े। कबीर वर्ग, वर्ण, धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय से परे सच्ची इंसानियत के मुरीद थे। उस प्रेम के पुजारी थे, जहां बदले में कुछ पाना नहीं, महज देना ही देना है। और यह देना भी मामूली नहीं, सब कुछ से नाता तोड़कर अपने आपको ही दे देना है, अपना आपा खोकर उनके साथ आना है। जाहिर है कि कबीर की गुहार पर न तो घर फूँकने वाले आगे आये और न अपना सिर कटाने वाले। उनकी आवाज बस वातावरण में गूँजती रही :

कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ।

जो घर जारे अपना चले हमारे साथ॥

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक निबन्ध है, 'घर जोड़ने की माया', सो जिस समाज में घर जोड़ने की माया की धूम मची हो, आपस की होड़ा-होड़ी हो,

वहां घर फूँककर कबीर की तरह सरे बाजार खड़े होने का साहस कितनों में होता। कबीर की पुकार अनसुनी ही रह गयी। दूसरे, जहां अपने आप को, अहंकार और दंभ को छोड़ना तो दूर, उसे दूसरों पर जबरन थोपते हुए सुख और संतोष पाने वालों का मजमा हो, वहां सच्चे प्रेम की राह गर सूनी ही रह जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। कबीर कहते रहे :

कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।

सीस उतारे भुईं धरे सो घर पैठे आहि॥

जाहिर है कि यहां भी कबीर की आवाज अनसुनी रही। सचमुच बड़ा कठिन और दुर्लभ था, वह प्रेम जिसका सपना उन्होंने देखा था और अपना सब कुछ देकर जिसे उन्होंने हासिल किया था। बड़ी अलभ्य थी वह इंसानियत जिसकी बेल इस धरती पर वे रोपना चाहते थे। कबीर की विद्रोही वाणी इसीलिए आजीवन गूँजती रही, अकेली गूँजती रही और कितनी बड़ी आस्था थी उनकी कि उन्होंने असफलता के बावजूद समझौते की गलियों में भटककर उसे गुमराह नहीं होने दिया। वे अपनी जमीन से कण भर भी, अपने स्वप्नों और संकल्पों के मूल्य पर नहीं हटे। मनुष्य को, समाज को तथा जीवन को जिस रूप में वे ढालना चाहते थे, जिस मनुष्य, नये समाज तथा नये जीवन की परिकल्पना उन्होंने की थी, उनके अपने समय की समस्त रूढ़िवादी प्रतिक्रियावादी-प्रतिगामी शक्तियां उनके खिलाफ एक जुट थीं। एक दुर्द्धर्ष और अपराजेय योद्धा की तरह वे आजीवन इन शक्तियों से जूझते रहे और उन्होंने उनके समक्ष घुटने नहीं टेके, उनसे हार नहीं मानी।

उनकी वाणी उलटे प्रखर से प्रखरतर होती गयी, उसे चुप कर पाना तो दूर उसे कोई मद्धिम भी नहीं कर पाया। हर समझौते को उन्होंने लानत दी, हर प्रलोभन को उन्होंने टुकराया, हर खतरे का उन्होंने सामना किया, किन्तु उस मशाल को ऊंचे हाथों थामे रहे, जिसकी रोशनी में ही एक नये इंसान, एक नयी जिन्दगी तथा एक नयी संस्कृति तक पहुंचने वाली राह मिल सकती थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह बहुत ठीक लिखा है

कि कबीर कदापि समन्वयवादी नहीं थे। किसी प्रकार की भी 'दीन इलाही' जैसी पैरोकारी उन्होंने नहीं की। हिन्दू तथा इस्लामी धर्ममत के श्रेष्ठांशों को चुनकर, उनकी अपनी संस्कृतियों के सारतत्त्व को गूँथकर समन्वय का एक गोरखधंधा प्रस्तुत करने का प्रयास उन्होंने कभी नहीं किया। उन्होंने हिन्दू तथा इस्लामी धर्ममत दोनों को तुकराया, उनके शास्त्र ग्रन्थों को कोई तरजीह नहीं दी, उनके पण्डितों और मुल्लों को किसी भी स्तर पर बरदाशत नहीं किया। उन्होंने इन सब पर हमला किया, इन सबकी धज्जियां उड़ायीं। उनका रास्ता इन सबसे अलग था और अपने मार्ग पर, उसकी सत्यता पर उनका अगाध विश्वास था। अपने लक्ष्य की सच्चाई पर उनकी अप्रतिहत आस्था थी—तभी चली आ रही सारी लीकों को रौंदते हुए वे अपनी लीक अलग बनाकर चले, सायर, सिंह और सपूत का उदाहरण सामने रखा। यदि अपने स्वानुभवों पर, अपने रास्ते की सच्चाई पर उनका इतना अखण्ड विश्वास न होता तो अनपढ़ होते हुए भी पंडितों के गढ़ काशी में उनके पोथी ज्ञान को कठोर चुनौती देते हुए उन्हें इस प्रकार नहीं ललकारते कि :

मैं काशी का एक जुलाहा, बूझहु मोर गियाना।

या उन्हें चुनौती देते हुए ऐसा नहीं कहते, 'पण्डित वाद वदंते झूठा।' वस्तुतः कबीर सरापा विद्रोह की जीवंत मूर्ति थे। राम नाम के बीज मंत्र को उन्होंने इस प्रकार जी लिया था कि वे निर्भय हो गये थे। उन्हें न कट्टरपंथी हिन्दुओं से भय था न मुल्लों से। अपने राम की भांति वे भी 'ना हिन्दू ना मुसलमान' थे और इस बात को उन्होंने अपने समय में साहस के साथ घोषित किया था। उन्होंने हिन्दुओं की हिंदुवाई और तुरकों की तुरकाई अच्छी तरह देख ली थी। वे जान चुके थे कि दोनों ही अंधे हैं और जो खुद अंधे हों, वे दूसरों को रास्ता क्या दिखाएंगे :

अरे इन दोउन राह न पाई।

हिंदुवन की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई॥

ऐसी स्थिति पर वे महज उन पर हंस ही सकते थे, उनकी मखौल उड़ा सकते थे, उनके विचारों और

बाह्याचारों की धज्जियां उड़ा सकते थे, और उन्होंने उनकी धज्जियां उड़ाई भी। बिना उनके तत्त्ववाद की परवाह किये उन्होंने उस सारे आचार-विचारों पर कड़ी चोट की, जो साधारण जन को अपमानित करते थे, आदमी और आदमी में फर्क करके देखते थे, आदमीयत से बढ़कर सतही विधि-विधानों को, खोखली पूजा-चर्या को, सड़े-गले रीतिरिवाजों को मानते थे। जोगी हो अथवा अवधूत, पंडित हो अथवा मुल्ला, शेख हो अथवा ब्राह्मण, उन्होंने किसी को नहीं बख्शा। तिलमिला देने वाले सवालों की झड़ी लगाते हुए उन्हें निरुत्तर किया। सैकड़ों की तादाद में उनकी ऐसी साखियां तथा पद हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि प्रतिपक्षियों पर आक्रमण करते समय कबीर कितने निर्मम हो उठते थे :

मन ना रंगाए रंगाए जोगी कपड़ा।
आसन मारि मंदिर में बैठे,
ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ाँले,
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा॥
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले,
काम जराय जोगी होइ गैले हिजरा॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रंगौले,
गीता बाँच के होय गैले लबरा॥
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवजवा बंधल जैबे पकड़ा॥

और मुसलमानों के बाह्याचार पर कबीर की फटकार है :

काजी कौन कतेब बखाने।

पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहिं जाने।
सकति से नेह पकरि कै सूनत, यह न बंदू रे भाई,
और खुदाइ तुरक मोहिं करता तो आपे कटि किन जाई।
हां तो तुरक किया करि सुन्नति औरति सो का कहिए।
अरथ सरीरा नारि न छूटे आथा हिन्दू रहिए।
छाड़ि कतेब राम कहि काजी खून करत हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की काजी रहे झख मारी॥

ये मात्र एक-एक उदाहरण हैं, जहां कबीर हिन्दू-मुसलमानों के कर्मकाण्डों तथा बाह्याचारों पर निर्मम हुए

हैं, गोकि निर्ममता कबीर के स्वभाव में न थी, अहंकार उनकी प्रकृति में न था। वे अहंकार से सर्वथा रहित तथा प्रकृति से नितांत कोमल और विनीत थे। जब वे अपना सीस काटकर पहले ही राम की देहरी में अर्पित कर चुके थे तब अहंकार रहता भी तो कहां। कबीर के इस रूप को पहचान लेने पर ही उनके विद्रोही और क्रान्तिकारी रूप की, उनके आक्रामक और समझौता-विहीन रुख की सही पहचान हो सकती है।

कबीर के इस रूप को, जहां वे एक विह्वल प्रेमास से भीगे, उससे बाहर से भीतर तक सराबोर, विरह की कठिन चोट से घायल और आर्त, एक संत, साधक और भक्त हैं, उनके उस रूप से, जहां वे ओज से दीप्त, भयानक रूप से आक्रामक और कठोर हैं, अलग करके नहीं देखा जा सकता। कबीर अपनी अद्वितीयता के साथ वहां भी हैं और यहां भी। दोनों रूपों की एकात्मता कबीर की सही पहचान है। दोनों को अलग-अलग करके कबीर को समझने और पहचानने का प्रयत्न करना उन्हें या तो न पहचानना है या अधूरा पहचानना है और इस अधूरी, खंडित या एकांगी पहचान पर आधारित उनके बारे में हमारे सारे निर्णय भी अधूरे, खंडित और एकांगी होंगे। कबीर का व्यक्तित्व एक समग्र व्यक्तित्व है, उनकी चेतना एक अखण्ड चेतना है, उनकी साधना, उनकी भक्ति, उनका संतत्व, उनकी डांट-फटकार, उनका अक्खड़पन, उनका मूर्तिभंजकत्व, सब उनकी इस अखण्ड चेतना की ही नाना अभिव्यक्तियां हैं; उसी के अलग-अलग तेवर हैं।

उनमें अंतर्विरोध दिखायी पड़ सकता है, असंगति लग सकती है, किन्तु तभी, जब हम कबीर के समग्र को नजरअंदाज करते हुए टुकड़ों में पढ़ने और गुनने का प्रयास करेंगे। हम कबीर के उन अंतर्विरोधों को ढँकना नहीं चाहेंगे, जो उनके अपने युग जीवन से सम्बन्ध रखते हैं, यह मानते और कहते हुए भी कि कबीर ने अपने समय का अतिक्रमण किया था और उसे काफी कुछ चीरते हुए क्षतिग्रस्त करते सामने आये थे। अपने अनेक समानधर्माओं को वे पीछे छोड़ते हुए अपने युग

जीवन का अतिक्रमण करते हैं, फिर भी कबीर एक व्यक्ति थे और युग के अपने निशान भी उन पर पड़े हैं, कहीं कुछ ज्यादा, कहीं कुछ कम। किन्तु इससे कबीर के बारे में हमारी मूलवर्ती धारणा में कोई अंतर नहीं आता। अपने समय और समाज के अंतर्विरोधों को झेलने वाले, उनके बीच से रास्ता बनाने वाले, एक दुर्द्धर्ष योद्धा की भांति उससे टकराने वाले के अपने शरीर और अपनी चेतना में प्रतिपक्षी की कुछ खरोंचे आएं ही, और वे कबीर के व्यक्ति और उनके विचारों पर दिखायी भी देती हैं, परन्तु कबीर के द्वारा युग पर डाले गये निशान उनके अपने ऊपर पड़े निशानों से कहीं ज्यादा गहरे हैं, और यहीं कबीर वस्तुतः कबीर भी हैं।

हम जो बात ऊपर कहना चाहते थे वह यह है कि कबीर के भक्त, उनके संत या उनकी भक्ति, उनके संतत्व तथा उनकी विद्रोही छवि को एक और अखण्ड माना जाना चाहिए, उनमें फांक करके हमें उन्हें नहीं देखना चाहिए। इस सत्य को भांप लेने के मायने हैं कबीर को सही अर्थों तथा सही आशय के साथ समझने की दृष्टि पा लेना। समाज का प्रभु वर्ग इसी सत्य को नहीं पहचान पाया, यही कारण है कि कबीर उसकी नजरों में आज भी तिरस्कृत हैं, आज भी उपेक्षित हैं और जब तक वर्ग, वर्ण, धर्म, सम्प्रदाय, जाति और नस्ल की दीवारों को ढहाते हुए इंसानियत और इंसानी संस्कृति की वह छवि नहीं उभरती, जिसे कबीर ने देखा था और अपने युग को निर्मम होते हुए भी दिखाना चाहा था, जब तक तमाम प्रकार के झूठे दावों को मिटाते-गिराते सच्ची मानवता का वह सोता अपने समूचे वेग से नहीं फूटता, जिसके लिए कबीर आजीवन फावड़ा और कुदाल लिए श्रमरत रहे, तब तक कबीर इसी प्रकार उपेक्षित रहेंगे, इसी प्रकार त्याज्य बने रहेंगे, इसी प्रकार बे-पहचान होंगे।

सच पूछा जाये तो कबीर अपने समय से बहुत आगे की हस्ती थे। समय ने अपने कुछ निशान उन पर छोड़े जरूर, पर वे समय की गिरफ्त में आ नहीं सके, उसे झाड़ते और मुंह बिराते हुए आगे निकल गये। हम

कह चुके हैं यही कबीर का कबीरत्व है। न उन्हें उनके समय के लोग ठीक से जान और गुन सके, और न आज ही वे सही अर्थों में जाने और पहचाने जा रहे हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि इतिहास उसी दिशा की ओर गतिशील है, जिस दिशा की ओर कबीर की उंगली थी। यह भी निश्चित है कि आने वाला युग कबीर का युग होगा; क्योंकि कबीर ने जो कुछ देखा और दिखाना चाहा था, वह बड़ी कठिन साधना के बाद उन्हें हासिल हुआ था। बड़े गहरे अनुभवों के साथ जुड़कर सामने आया था; जिन्दगी के कीचड़ में कमर तक धंसकर सच्चाई के कमल का साक्षात्कार किया था, दूर-दूर तक छापे अंधकार में भी उनकी आंखें शताब्दियों बाद आविर्भूत होने वाले भविष्य को देख सकी थीं।

जिस समय सारा समाज सुख की नींद सो रहा था, मनुष्यता के उज्ज्वल भविष्य का यह द्रष्टा जाग रहा था। सारा समाज सुख-सुविधाओं को भोग रहा था, किन्तु कबीर दुखों की भट्टी में सुलग रहे थे, युग की पीड़ा का साक्षात्कार करते हुए आंसू बहा रहे थे। वे ऊपर से अक्खड़ तथा फक्कड़ थे; किन्तु भीतर से नितांत दुखी तथा संतप्त; अपने लिए नहीं, कोटि-कोटि साधारण जनों की पीड़ा तथा व्यथा से मुक्ति के लिए। यह कबीर के मर्म से निकली वाणी है, जो उनकी इन पंक्तियों से गूंजी हैं :

सुखिया सब संसार है, खावे औ सोवे।

दुखिया दास कबीर है, जागे औ रोवे॥

वे जाग रहे थे और रो रहे थे, शेष सब खा रहे थे, और सुख की नींद सो रहे थे। क्या है कबीर का यह जागना और रोना? क्या हम इसे मात्र अभिधा में ही ग्रहण कर चुप रह जायें या उसकी कोई दूरवर्ती तथा गहरी व्यंजना है, जिससे हमें मुखातिब होने की जरूरत है?

हम कह चुके हैं कि कबीर देश के सांस्कृतिक नवजागरण के अग्रदूत थे, अपने गुरु रामानन्द की भांति। जब-जब देश शताब्दियों तक गहरी निद्रा में निमग्न रहकर जागा है, उसके जागरण की अभिव्यक्ति

उसके घोर रुदन में ही हुई है। जीवन के यथार्थ का अनुभव जागने पर ही होता है। सुप्तावस्था में मनुष्य स्वप्न देखता है और जागने पर उसे वास्तविकता दिखायी देती है। वास्तविकता का यह दीदार जाहिर है कि सुखकर नहीं होता। सुप्तावस्था के युग अंधकार के युग के नाम से भी पुकारे गये हैं और यह अंधकार अज्ञान का, आत्मग्रस्तता का, छल का, अविद्या का, मूढ़ता का अंधकार रहा करता है। तभी जागने पर जो कुछ सामने दिखायी देता है, वह सुख नहीं पहुंचाता, भीतर तक मथ देता है। कबीर का भी यह जागना और रोना इसी प्रकार का है। वह आध्यात्मिक भी है और ठेठ सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकता से प्रसूत भी।

कबीर ने अपने आविर्भाव के साथ जिस युग-सत्य से साक्षात्कार किया था और जिसका एक संकेत भक्ति-आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए हम दे चुके हैं, उस युग सत्य को देखकर कबीर जैसे निष्ठावान और ईमानदार व्यक्ति रो ही सकते थे। वे चाहते थे कि उनके इस रुदन में कोटि-कोटि कण्ठों का रुदन भी शामिल हो; किन्तु उनके रुदन में सुविधाभोगी वर्गों का कंठ स्वर शामिल नहीं हो सका। कबीर रोते रहे, रोते रहे और अंततः सब कुछ को स्वाहा करते हुए एक प्रचण्ड विद्रोही के रूप में सामने आ गये। कबीर के विद्रोही व्यक्तित्व का एक प्रधान कारण उनका यह अनंतकालीन जागरण और रुदन भी है। आधुनिक युग में आधुनिक नवजागरण के सन्दर्भ में भारतेन्दु भी हमें रोने तथा देशवासियों से उस रुदन में सहयोग देने को कहते देख पड़ते हैं :

आवहु सब मिलि के रोवहु भारत भाई।

हा, हा भारत दुरदशा न देखी जाई॥

जो व्यक्ति निरंतर जागने और रोने के लिए अभिशप्त हो, इस प्रकार जागकर और रोकर जो समाज, धर्म और शासन के प्रभुओं की सुख की नींद हराम किये हो, समाज, धर्म तथा शासन के ये मसीहा उसे क्यों और कैसे संरक्षण दे सकते थे? उसे कैसे स्वीकार कर सकते थे? कबीर प्रभुवर्ग के द्वारा तब से लेकर आज तक

उपेक्षित क्यों रहे, उसका एक प्रधान कारण उनका यह जागरण और रुदन भी है।

अपने साई का दीदार पाकर कबीर गाहे-बगाहे भले ही उमग पड़ते हों, मस्त और बेपरवाह हो जाते हों, जगत का दीदार उन्हें बेहद उदास कर देता था। बाहर के फक्कड़पन और मस्ती की सात पर्तों के भीतर यह जो उदासी छिपी हुई है, ऊपर से दिखायी पड़ने वाली निपट कठोरता के भीतर यह जो करुणा का अजस्र सागर उनके अंतःकरण में लहरा रहा है, उसकी गहराइयों का अनुमान करके ही कबीर की ऊंचाइयों को मापा जा सकता है। कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व में विपरीतों की यह जो एकता है, विरुद्धों का यह जो सामंजस्य है, यही उनकी अद्वितीयता है। यहीं वे अपने समानधर्माओं से जुड़े रहकर भी उनसे अलग हैं, परम्परा के जीवित और जाग्रत अंश को लिए हुए भी उससे विद्रोही हैं, और यही उनके बड़प्पन का राज भी है।

कबीर मात्र पहुंचे हुए संत और साधक ही नहीं थे, वे एक महान कर्मयोगी भी थे। मसीहाओं के अंदाज में उन्होंने जनता को केवल उपदेश ही नहीं दिये, केवल सिद्धान्त ही नहीं बघारे, अपनी कही हुई एक-एक बात को खुद अपने जीवन में आचरित भी किया। रूढ़ियों और रीतियों पर प्रहार करना तो सहज है, स्वयं अपने को उन पर धार की तरह चला देना सरल नहीं है। कबीर वागवीर नहीं कर्मवीर थे। वे किसी ऊंचे टीले पर खड़े होकर लोगों का उद्बोधन नहीं कर रहे थे, कंधे से कंधा मिलाकर लोगों के साथ चल भी रहे थे। कबीर मिसाल हैं तो इसलिए कि पहले उन्होंने अपना घर फूँका, फिर दूसरों से अपना घर फूँककर अपने साथ चलने को कहा। कहते हैं कि काशी में प्राण छोड़ने से आत्मा सीधे बैकुंठ जाती है, काशी नगरी शंकर के त्रिशूल की नोक पर अवस्थित है। लोग-बाग दूर-दूर से मुक्ति की लालसा में महज प्राण छोड़ने काशी आते हैं। काशी की हिन्दू धर्म मत में महिमा ही ऐसी है। इसके विपरीत मगहर है, जहां पर मृत्यु को प्राप्त होने वाला हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अगले जन्म में निकृष्ट योनि प्राप्त करता है।

कबीर जीवन भर काशी में रहे; किन्तु जब प्राण छोड़ने का समय आया, तो पंडितों और सारे शास्त्रों को मुंह बिराते हुए सीधे मगहर पहुंचे और मगहर में अपने प्राण छोड़े। कबीर मगहर के बारे में सब कुछ जानते हुए मगहर पहुंचे। अपनी कथनी और करनी को उन्होंने एक कर दिया। कबीर सच्चे सूरमा थे। वह सूरमा ही क्या जो निर्णय की घड़ी आने पर सोच-विचार करे। कबीर ने अपने को ही दांव पर लगाया और मगहर जाते हुए वे लोगों को उस मर्म से भी परिचित करा गये, जो जीवन भर की साधना के बाद उन्होंने पाया था। अर्थात् जब राम के साथ सच्ची लौ लगी हुई है कहीं पर भी प्राण छूटे, फर्क क्या पड़ता है :

लोका तुम हो मति के भोरा।

जो कासी तन तजे कबीरा तो रामहि कौन निहोरा।

क्या कासी क्या मगहर ऊसर हिरदै राम जो प्यारा॥

राम यदि सर्वत्र व्याप्त हैं, घट-घट में हैं, कीरी-कुंजर में हैं, कण-कण में हैं, तो फिर काशी और मगहर का फर्क कैसा? मरने के लिए काशी की भागदौड़ क्यों? बहुत पहले उन्होंने पंडितों और मुल्लों से कुछ ऐसा ही सवाल किया था कि यदि भगवान मंदिर में रहता है, और खुदा मस्जिद में, तो मंदिर-मस्जिद जहां नहीं हैं, वहां का ठाकुर कौन होता होगा। वहां किसकी ठकुराई चलती होगी :

तुरुक मसीत देहरे हिन्दू दुहुटां राम खुदाई।

जहां मसीति देहरा नाहीं तहां काकी ठकुराई॥

वस्तुतः कबीर राम-नाम के बीज मंत्र को जीवन में उतार चुके थे। गोकि उनकी साधना बहुत कठोर थी, किन्तु सारी अग्नि परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हुए वे अपने राम का दीदार हासिल कर चुके थे। आंख से निकले आंसुओं से नहीं, आंख से टपके लहू से अपने प्रियतम के चरण धो चुके थे :

सोई आंसू साजणां सोई लोक बिड़ाहिं।

ले लोइण लोही चुवै, तौ जाणौ हेत हियाहिं॥

गालिब के द्वारा लिखी यह पंक्ति बहुत मशहूर है, “जब आंख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है”,

कबीर की उपर्युक्त उक्ति से उसका मिलान कीजिये जब बात लहू से आंसुओं तक पहुंच चुकी हो, जब इस बिन्दु पर प्रियतम के साथ एकात्म हो चुका हो, तब फिर स्वर्ग और नरक, बंधन और मोक्ष का महत्त्व ही क्या रह जाता है। कबीर के लिए जीवन और मृत्यु एक बन चुके थे, वे दोनों के प्रति सम थे। वे तो ऐसे सूरमा थे कि जो जब जीता है, तो मौत को एक जेब में रखे हुए और जब मरता है, तो जिंदगी जिसके कदम चूमती है :

एक समसेर इकसार बजती रहे,
खेल कोई सूरमा संत झेले।
सील से नेह करि ज्ञान को खंग लै,
आय चौगान में खेल खेले॥

कबीर का चिंतन, उनकी कविता, अथवा उनकी साधना इतनी विराट आयामों वाली है कि वह आत्म-बोध और जगत-बोध जैसे विभाजनों को स्वीकार नहीं करती। उनके यहां दोनों ही एकाकार हैं। उनकी भक्ति भी वस्तुतः योगसाधनापरक भक्ति नहीं है, जैसा कि प्रायः उसे समझा जाता है। वह ठेठ जीवन के बीच से रास्ता बनाती है। कबीर संसार में वैराग्य का प्रतिपादन नहीं करते। वे केवल राम-नाम के मर्म को पहचानने पर बल देते हैं। उनकी शर्त जरूर कठिन है—खांडे की धार पर चलने के समान, और उस सबको पीछे छोड़कर आगे बढ़ने की जो जाति, धर्म, वर्ग, तथा वर्णगत संस्कारों के रूप में सदियों से मनुष्य की चेतना में पत-दर-पत जमता चला जा रहा है। कबीर जब लोगों से अपना घर फूंकने की बात कहते हैं या शीश को उतार कर जमीन पर रखने की बात करते हैं, तो उनका आशय इस सबको छोड़ देने से ही है। एक वाक्य में कहना चाहें, तो अहंकार से मुक्त होने से है।

जिस युग में कबीर जन्मे थे और जिन परिस्थितियों में उन्हें जीना पड़ा था, उसके आधार पर सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि जो कुछ वे कह सके और कर सके, उसे कितने साहस और जीवट के साथ उन्हें कहना पड़ा होगा। सचमुच जान की बाजी लगाकर, सिंधौरा हाथ में लेकर मैदान में उतर पड़ने वाला सूरमा

ही वह सब कुछ कह और कर सकता है। हम आज एक मानव धर्म और एक मानव संस्कृति की बात करते हैं, और हममें से कितने वस्तुतः आज भी ऐसा कह पाते हैं। कबीर यह सब पांच सौ साल पहले कह सके और कह ही नहीं सके अपने आचरण में उसे उतार भी सके थे। उनके पास इतना आत्मविश्वास था कि वे साहस के साथ यह भी कह सके कि उनका रास्ता ही एकमात्र रास्ता है, और बाकी सारे रास्ते गुमराह करने वाले हैं। इसे भले ही उनकी गर्वोक्ति समझा जाए, उनका अहंकार माना जाए, किन्तु जैसा कि उनका जीवन, उनका आचरण और उनकी करनी थी, उनका यह कहना कि जिस चादर को बड़े-बड़े सुर, नर और मुनियों ने ओढ़-ओढ़ कर मैला कर दिया, उसे वे बेदाग बनाए रख सकने में सफल हुए, शत प्रतिशत सही है।

हम पहले भी कह चुके हैं कि कबीर में अहंकार का लेशमात्र भी नहीं था, अतएव उनके गर्वोक्ति करने का सवाल ही नहीं उठता। आत्मविश्वास से पूरित, सात्त्विक अंतःकरण से फूटे सत्य कथन का स्वाभाविक तेज यदि किसी को गर्वोक्ति या अहंकार लगे, तो यह अलग बात है। अन्यथा यदि कबीर की चादर बेदाग न होती, न तो वे पंडितों की नगरी काशी में इतने आत्मसम्मान से रह सकते थे, और न उन्हें चुनौती दे सकते थे। जो लम्बा आयुष्य उन्होंने भोगा, वह भी उनके शरीर और मन रूपी चादर के बेदाग रहने का ही परिणाम था। आत्मसम्मान के साथ उन्होंने एक लम्बा और तेजस्वी जीवन जिया। बड़ी से बड़ी सांसारिक सत्ता के समक्ष भी वे घिघियाए नहीं, दीन नहीं हुए। अपनी रोजी-रोटी उन्होंने खुद अर्जित की, और उससे अधिक अर्जित नहीं किया, जितने की उन्हें आवश्यकता थी :

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम समाय।
आप न भूखा रहि सके, साधु न भूखा जाय॥

जुलाहे का अपना पेशा उन्होंने अंत तक नहीं छोड़ा। किसी प्रकार की हीन भावना से रहित डंके की चोट पर अपने को जुलाहा तथा कोरी कहा, 'कहे कबीर जुलाहा', 'कहे कबीरा कोरी'। न तो भक्तों की भीड़ उन्हें

भरमा सकी और न साधना तथा संतत्व का भाव उन्हें अपने सहज मानवीय क्रिया कलापों से पराङ्मुख कर सका। कबीर की यह वह मनुष्यता है, जो उनके संतत्व के शीर्ष पर चढ़ कर बोलती है। बेदाग और निष्कलुष जीवन आखिर कहते किसे हैं?

जब तब कबीर की प्रतिभा को ध्वंसात्मक भी कहा गया है। हम इस भ्रांति का निराकरण कर चुके हैं कि कबीर को समग्रता में देखकर ही पहचाना जा सकता है। कबीर कतई केवल ध्वंस के आग्रही न थे, वे मूलतः और वस्तुतः एक नये निर्माण के आकांक्षी थे। यह और बात है कि अपनी परिकल्पना की इमारत के लिए जो नींव वे डालना चाहते थे, उसके लिए उन्हें गहराई तक जाकर समाज की जड़ों पर कुदाल चलाने पड़े। इसे यदि ध्वंस कहा जाये, तो पूछा जा सकता है, आखिर निर्माण किसे कहते हैं?

इस बिन्दु पर आकर हम उस परम्परा पर भी एक निगाह डाल लेना चाहते हैं, जिसका प्रवर्तन कबीर से होता है तथा उन कारणों पर भी विचार करना चाहते हैं, जिनके रहते विद्रोह का पथ अपनाने वाली निर्गुण भक्ति की यह परम्परा कालांतर में क्षीण पड़ते हुए समझौते का रास्ता अपनाने वाली सगुण भक्ति की धारा के समक्ष दब गयी या दबा दी गयी।

कबीर की परम्परा में यों तो अनेक नाम हैं; किन्तु नानक, रैदास, दादू विशेष प्रसिद्ध हैं। महाराष्ट्र में अनेक कारणों से सगुण-निर्गुण में भेद नहीं रहा, अन्यथा दरजी कुल में जन्मे नामदेव, कबीर के ही समानधर्मा हैं। कबीर के निर्गुण पंथ पर लिखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है :

इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्ति रस में शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा बहुत आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्य तत्त्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊंचे से ऊंचे

सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया। पंथ चल निकला, जिसमें नानक, दादू, मलूकदास आदि अनेक संत हुए। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, 67)

कबीर के कार्य पर यह आचार्य शुक्ल की महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है। किन्तु अन्यत्र कबीर पर अपना मत देते हुए शुक्ल जी वस्तुनिष्ठ नहीं रह पाये हैं। यह सर्वविदित है कि कबीर के निर्गुण मत का आगे चलकर जोरदार खंडन हुआ। कृष्ण भक्त सगुण कवियों ने तो भ्रमर गीतों के द्वारा यह कार्य किया, किन्तु राम भक्त सगुण कवियों ने सीधे ही निर्गुण मत पर चोट की। आचार्य शुक्ल का सगुण भक्ति विशेषकर सगुण राम भक्ति पर अनुराग जग जाहिर है। अतएव जहां उन्होंने कबीर की सराहना इस कारण की है कि उन्होंने नाथपंथियों के अहेतुक प्रभाव से साधारण जन को मुक्त करते हुए उसे भक्ति रस की ओर मोड़ा, वहां कबीर की निर्गुण भक्ति के प्रति वे इस कारण उदार और वस्तुनिष्ठ नहीं रह पाये हैं कि वह उस सगुण राम भक्ति के सीधे विरोध में सामने आती है, जिसमें राम को दशरथ सुत मानकर उनके अवतारी रूप का आख्यान किया गया है। कबीर, जाहिर है कि राम के इस रूप के कायल नहीं थे, उनका राम तो कोई दूसरा ही मर्म रखने वाला था। उन्होंने कहा भी है कि :

दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।

रामनाम को मरम है जाना॥

यही कारण है कि कबीर के बारे में लिखते हुए आचार्य शुक्ल ने कुछ इस प्रकार का आशय व्यक्त किया है कि चूंकि वे पढ़े-लिखे तो थे नहीं, अतएव इधर-उधर से सुन-सुन कर जो कुछ उन्होंने अपनी अटपटी बानी में कहा, साधारण जन उससे जरूर प्रभावित हुआ। उनका आशय कुछ इस प्रकार का भी है कि साधारण जन भी कबीर की बानी से प्रभावित कम हुए, आतंकित अधिक हुए। वे लिखते हैं :

अनेक प्रकार के रूपकों, अन्योक्तियों के द्वारा ही उन्होंने ज्ञान की बातें कही हैं, जो नई न होने पर भी वागवैचित्र्य के कारण अपढ़ लोगों को चकित किया

करती थीं।' और भी उनका कहना है—'कबीर अपने श्रोताओं पर यह अच्छी तरह भासित करना चाहते थे कि हमने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है। इसी से वे प्रभाव डालने के लिए बड़ी लंबी-चौड़ी गर्वोक्तियां भी कभी-कभी करते थे। (वही, 67)

कबीर की तथाकथित गर्वोक्तियों के बारे में हम कह चुके हैं। सवाल ब्रह्म के साक्षात्कार का है। हमारे अनुसार यह बहस भी बहुत तात्त्विक नहीं होगी कि ब्रह्म के साक्षात्कार का न होकर कबीर के बारे में रिकार्ड को ठीक रखने का है। आचार्य शुक्ल की कबीर पर की गई टिप्पणियां अनेक सवाल उठाती हैं। यदि नाथपंथी सामान्य जनता को अपने कारनामों से चकित और आतंकित कर रहे थे तो क्या कबीर ने भी वही रास्ता चुना? फिर कबीर को नाथपंथियों के प्रभाव से साधारण जनता को मुक्त करने का श्रेय क्यों दिया जाये? दूसरा सवाल है कि क्या कबीर की लपेट में साधारण जनता महज आतंकित और चकित होकर ही आई, और उनकी वाणी में उनके अपने गहरे अनुभवों का कोई भी ताप नहीं था; क्या उसमें उस मनुष्य सत्य का तेज नहीं था, जिसके बूते पर ही आचार्य शुक्ल के अनुसार कबीर साधारण जन में आत्मसम्मान की भावना भरने में समर्थ हुए? क्या कबीर की वाणी आत्मसत्य तथा युगसत्य दोनों से दीप्त नहीं थी? क्या पढ़े-लिखे समाज के मानस को कबीर की अनुभव सिद्ध वाणी ने नहीं झकझोरा? क्या कबीर में केवल वाग्वैदग्ध्य ही था? ये वे प्रश्न हैं, जो इसलिए विचारणीय हैं कि ये एक मर्मज्ञ और सच्चे आचार्य की टिप्पणियों से उद्भूत हुए हैं।

कबीर ने सचमुच कुछ चमत्कारिक उक्तियां कहीं हैं, कुछ आतंक भी जमाया है, जमाना चाहा है, पर उसका लक्ष्य साधारण जन नहीं जैसा कि आचार्य शुक्ल का विचार है, उसका लक्ष्य है वह पढ़ा-लिखा समाज जो पढ़ा-लिखा होकर भी कबीर जैसी प्रतिभा वाले अनपढ़ के लिए ज्ञान-शून्य था, वस्तुतः अनपढ़ था। कबीर ने आतंकित किया है, आतंक जमाया है, उस तथाकथित पढ़े-लिखे समाज पर, पोथी ज्ञान से

भाराक्रांत उस पंडित और शास्त्रज्ञ वर्ग पर, अहंकारी तथा अभिमानी उन कट्टरपंथियों पर, जो साधारण जन पर अपने खोखले विधि-विधानों, अपने अमानवीय कानून-कायदों तथा अपने शास्त्रीय पांडित्य के बल पर दुगुना आतंक जमाए हुए था, जिसने साधारण जन के जीवन को नारकीय बना रखा था, और जिसकी तसदीक आचार्य शुक्ल ने यह कहकर की है कि कबीर ने मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता के मन में आत्मगौरव का भाव जगाया।

अतएव, कबीर के चमत्कार और आतंक का लक्ष्य साधारण जन न होकर कट्टरपंथी पंडित और शास्त्रज्ञ हैं। अनपढ़ व्यक्ति, जैसे कि कबीर थे, और जिसका कोई मलाल उन्हें नहीं था, आखिर किस आधार पर शास्त्रज्ञों से लोहा लेता? उन्हें ही निरुत्तर करने के लिए कबीर ने उलटबासियां कहीं, शास्त्रज्ञान के वजन पर उन्होंने अनुभव को रखा, 'कागद की लेखी' की काट 'आंखिन की देखी' से की, और पांडित्यजन्य सारे अहंकार को प्रेम के ढाई अक्षरों पर तौल दिया। उन्होंने अपने आचरण, अपनी साधना, अपनी भक्ति, और सबसे आगे बढ़कर अपनी मनुष्यता से यह सिद्ध कर दिया कि संत वह नहीं है, जो ज्ञान के बोझ से दबा हुआ है, संत वह है जो पहले एक ईमानदार इंसान है, बाद में और कुछ। कबीर पर कोई भी बुनियादी निर्णय लेते समय हमें इन बातों को मद्देनजर रखना होगा।

कबीर के निर्गुण पंथ में नानक पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने कबीर की भांति 'ना हिंदू ना मुसलमां' की जमीन पर खड़े होकर सत्य तत्त्व का प्रचार किया। नानक गोकि उच्च कुल से आये थे, फिर भी उन्होंने वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म तथा संप्रदाय की संकुचित धारणाओं पर कड़ी चोट की और इस प्रकार कबीर की उस बेल को सींचा, जो उन्होंने बड़ी कठिनाई से नाना रूपों में विभाजित मनुष्य समाज के बीच रोपी थी। महाराष्ट्र में नामदेव ने मनुष्यता की इसी सामान्य भूमि को स्वीकार कर अपनी बातें कहीं, और इसी परंपरा में रैदास चमार भी सामने आये। चित्तौड़ की उच्च कुल

की राजरानी मीरा ने, कहते हैं, रैदास को अपने गुरु रूप में स्वीकारा। नामदेव, कबीर, नानक, रैदास, दादू, मलूकदास, मीरा की भक्ति की यह वह धारा है, जो एक ही परम तत्त्व को सामने रख अपने समय में समाज में आदमीयत की तलाश करती हैं। चंडीदास का मानुष सत्य इन संतों की वाणी में अपनी सारी प्रखरता के साथ गूँजा है।

कबीर और निर्गुण धारा की संत-परंपरा की सबसे बड़ी देन यही है कि उसने मनुष्य और मनुष्य के बीच फर्क करने वाली बड़ी से बड़ी शक्ति का विरोध किया। उसने एक ऐसी मानव संस्कृति की परिकल्पना हमारे सामने रखी, जो आज भी भले ही हमारे लिए काम्य बनी हुई हो, किंतु जिसकी ओर बढ़ता हुआ मनुष्य का एक-एक चरण ऐसी हजार यात्राओं से बढ़कर है, जो कुछ मनुष्यों के द्वारा कोटि-कोटि मनुष्यों को कुचलते हुए अपनी शक्ति तथा वैभव का विस्तार करने के लिए की जाती रही हैं। एक मानव धर्म, एक मानव समाज तथा एक मानव संस्कृति का सपना ही इन क्रांतद्रष्टा संतों की विरासत है, जो आगामी पीढ़ियों के लिए बड़ी मशक्कत के बाद उन्होंने सुलभ की है।

क्रांतद्रष्टा कबीर का सपना जरूर अभी साकार नहीं हुआ, पर वह मृत भी नहीं हुआ है। इतिहास के चरण जिस दिशा में बढ़ रहे हैं, उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि आगामी शताब्दी कबीर की शताब्दी होगी। और तब कबीर समाज तथा शासन के महाप्रभुओं के शाप से भी मुक्त होंगे। और तब उस नए मानव के तथा उस नई मानव संस्कृति के शिल्पियों के संरक्षण में, जिनका सपना वसीयत के रूप में कबीर ने उन्हें दिया है, कबीर की शताब्दी आयोजित होगी। कबीर तभी अपने सारे निहितार्थ के साथ, अपनी समूची वास्तविकता में, अपनी समग्रता में, पहचाने जाएँगे। अभी मंजिल दूर है, किन्तु कबीर की संतति के चरण उस ओर बढ़ रहे हैं। पाई हुई वसीयत को सहेजे वह बड़ी आस्था के साथ अपने अभियान पर है।

(भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य से साभार)

ऐसे संत कबीर हैं

रचयिता—ब्रह्मचारी रामलाल

प्रारंभ से अंत तक साफ कहने वाले संत कबीर हैं इसलिये हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर हैं

वे जैसा देखते हैं वैसा कहने वाले फक्कड़ फकीर हैं वे अत्यंत निश्चल और समुद्र जैसे शांत गम्भीर हैं

वे खुद ही सद्ज्ञान के जौहरी और वजीर हैं वे खरा सत्य कहने वाले परम अद्वितीय वीर हैं

वे महा निर्भीक आत्मलीन और स्व में स्थिर हैं वे जनता रूप पशुओं को दिशा दिखाने वाले अहीर हैं

कबीर वाणी सुनने वाले झोपड़ी से महल गरीब से अमीर हैं जो दूसरों के पीर को नहीं समझता वह काफ़ीर है

तन एक सराय मन पहरेदार और जीव मुसाफ़ीर है वैराग्य अभ्यास और पुरुषार्थ से बदलती तकदीर है

कबीर वाणी पंच मेल खिचड़ी नहीं चूभने वाला तीर है कबीर वाणी तो साधना ज्ञानादि मसाले से युक्त खीर है

तन और मन की तपन बुझाने वाला शीतल नीर है वे रहस्यवादी नहीं, यथार्थवादी बहता शुद्ध समीर है

आत्मप्रेम में सराबोर उनका जीवन प्रेम ही उनका चीर है आत्मा छुटती नहीं छुटने वाला यह नश्वर गंदा शरीर है

जीवन के सुख-दुख हमारे कर्मों के फल रूप खमीर है स्वयं सम्हल कर दूसरों को सम्हलाने वाले संयमी धीर है

असली भगवान ये प्राणी है तन ही उसका असली मंदिर है वे चमत्कार पाखण्ड और अंधविश्वास की मिटाते लकीर हैं

काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा और अंहकार जंजीर है धन जमीन, पद विद्या और मान बड़ाई आदि झूठी जागीर है

दया क्षमा शील सत्य विचारादि सद्गुण नहीं तो मरा जमीर है मन की शांति छोड़ आदमी सबमें बढ़चढ़कर माहिर है

आना जाना, मिलन, वियोग विपत्ति, जरजरता ये तो जग जाहिर है 'रामलाल' सारा दृश्य प्राणी और पदार्थ मिटने वाली तस्वीर है

व्यवहार वीथी

तिरस्कार न करें

घर में, यात्रा में, ट्रेन-बस में, सड़क में, रास्ता चलते कभी न कभी किसी न किसी भिखारी से आपका सामना जरूर पड़ा होगा और भिखारी ने आपसे कुछ मांगा होगा। आपने भिखारी को कभी कुछ दिया होगा, कभी नहीं दिया होगा। भिखारी को आपने क्या-कितना दिया या कुछ नहीं दिया यह महत्त्वपूर्ण नहीं है किन्तु महत्त्वपूर्ण यह है कि भिखारी को कुछ देते समय या नहीं देते समय भिखारी के लिए आपके मन में कौन-सा भाव जगा—दया-करुणा का, प्रेम का, घृणा का, तिरस्कार का, अपमान का। भिखारी को सामने देखकर आपके मन में जो भाव जगा वही आपके आंतरिक व्यक्तित्व की पहचान है। बाहरी वेषभूषा से किसी के आंतरिक व्यक्तित्व का आकलन नहीं किया जा सकता। उसका आकलन तो उसके व्यवहार, आचरण और शब्दों से ही किया जा सकता है। नीचे दिये जा रहे दो उदाहरणों से इसे स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है—

लगभग 15 वर्ष पूर्व की घटना है। कुछ सामान खरीदने एक संत के साथ रायपुर गया था। दुकानदार से बात हो रही थी। बगल का दुकानदार भी वहां आ गया था। उसी समय एक भिखारी आ गया और उसने विनय पूर्वक दुकानदार से कहा—बाबूजी, कुछ दे दीजिये। उसकी बात सुनकर दुकानदार ने उसे गाली देते हुए कहा—भागो, भागो, यहां कुछ नहीं मिलेगा। दूसरे दुकानदार ने कहा—अरे, गाली क्यों देते हो। कुछ दे दो एक-दो रुपये। पहले वाले दुकानदार ने कहा—यह अपने पहले जन्म के किये पापों का फल भोग रहा है। ईश्वर इसे इसके पापों का फल दे रहा है। इसलिए इसे या किसी भी भिखारी को कुछ देना, उसकी सहायता करना ईश्वर के न्याय में बाधा डालना है। किसी भिखारी को कुछ देकर ईश्वर के न्याय में बाधा डालकर मैं स्वयं पापी क्यों बनूँ?

इसके विपरीत एक दूसरा उदाहरण है—

एक सज्जन बड़े उदार थे। उनसे कुछ मांगने वाला कभी खाली हाथ नहीं जाता था। एक बार वे कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक भिखारी मिला और उनसे कहा—बाबूजी, बहुत भूखा हूँ। कुछ रुपये दे देते तो खरीदकर कुछ खा लेता। भिखारी की बात सुनकर उन्होंने कोट की जेब में हाथ डाला, कुछ नहीं मिला। पैंट-कमीज की जेब में हाथ डाला कुछ नहीं मिला। संयोग से उस दिन उनके पास कुछ नहीं था। उन्होंने संकोचपूर्वक भिखारी के दोनों हाथों को पकड़कर बड़े प्रेम से कहा—भैया! आज मेरे पास कुछ नहीं है। मैं तुम्हें दूँ तो क्या दूँ। मुझे खेद है कि आज मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकूँगा। उनकी बात सुनकर भिखारी ने कहा—बाबूजी, आप संकोच क्यों करते हैं। आपने मुझे वह चीज दी है जो आज तक मुझे किसी ने नहीं दिया था। मैं तो भिखारी हूँ और लोग अकसर भिखारी को गाली या फटकार देते हैं, किन्तु आज आपने मुझे अपने दिल का प्यार दिया है। आपका प्यार पाकर मेरा मन गद्गद हो गया है।

इन दोनों उदाहरणों में दोनों ने भिखारी को कुछ नहीं दिया, परंतु दोनों के मनोभावों में जमीन-आसमान का अंतर है। दोनों के भीतर जो चल रहा था वही बाहर प्रकट हुआ है। आपसे भिखारी या कोई अन्य कुछ मांगता है तो यदि आपको कुछ नहीं देना है तो प्रेम से कह दो कि मैं आपको कुछ नहीं दे सकता या आपको देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। किसी को गाली या तिरस्कार क्यों दे रहे हैं। गाली देने या अपमान-तिरस्कार करने का अधिकार आपका नहीं है। आपके पास दूसरों से ज्यादा धन, पद, अधिकार, विद्वता है तो क्या आपको गाली देने या तिरस्कार करने का अधिकार मिल गया है। याद रखें, दूसरों को गाली देंगे या उनका तिरस्कार करेंगे तो आपको भी यही मिलेगा। प्रकृति का यह अटूट नियम है कि जो दोगे आज नहीं तो कल लौटकर वही मिलेगा।

चूंकि आप पढ़े-लिखे हैं, धन-दौलत से संपन्न हैं, बड़े कहे जाने वाले लोगों के साथ आपका उठना-बैठना

है इसलिए आप अपने को सभ्य-समझदार मानते हैं और भिखारी अनपढ़ है या कम पढ़ा-लिखा है, धन-दौलत से रहित तथा मलिन वेषभूषा वाला है, कपड़े फटे-पुराने एवं गंदे हैं इसलिए वह असभ्य एवं नामसझ है। परंतु सभ्यता-असभ्यता का यह आकलन बहुत ही छिछला और सतही है। सभ्यता ज्यादा पढ़ाई-लिखाई एवं रुपये-पैसे में नहीं है, किन्तु व्यवहार-बरताव में है।

निश्चित ही भीख मांगना गलत है। कितने ही लोग शारीरिक-मानसिक दृष्टि से हर तरह से सक्षम एवं समर्थ होते हुए भी भीख मांगने को अपना पेशा बना लिये हैं। ऐसे लोग समाज के अपराधी हैं तथा सभ्य समाज के लिए कलंक हैं, किन्तु कुछ लोगों के लिए भीख मांगना मजबूरी है। या तो वे शारीरिक-मानसिक दृष्टि से अक्षम-असमर्थ हैं, रोगी, बूढ़े एवं लाचार हैं या बुढ़ापा तथा बीमारी की हालत में अपना कहलाने वालों ने उन्हें टुकरा दिया है। जीवन-निर्वाह का कोई सहारा न होने के कारण वे मजबूर-लाचार होकर भीख मांगते हैं। ऐसे लोगों की सेवा-सहायता करना समाज के सक्षम-समर्थ लोगों का कर्तव्य है और नैतिक दायित्व भी। ऐसे अक्षम, असमर्थ, लाचार, बेसहारा लोगों की कुछ सहायता न कर जो उन्हें गाली देते हैं या उनका अपमान-तिरस्कार करते हैं वे महा अपराधी हैं। मनुष्य की आकृति में होते हुए भी वे मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

आपने अनेक बार देखा होगा कि भिखारियों को भीख मांगते देखकर लोग उनको गाली देते हैं, उनपर गुस्सा करते हैं, उन्हें कायर-आलसी-कामचोर आदि कहते हैं, परंतु इन बातों को सुनकर भिखारी गुस्सा नहीं करता, अपशब्द नहीं कहता बल्कि आशीर्वाद देता है, कल्याण कामना करता है। कैसा अद्भुत है, लोग भिखारी को गाली दे रहे हैं, डांट-फटकार रहे हैं और भिखारी आशीर्वाद दे रहा है। सोचें सभ्य कौन है? आशीर्वाद, कल्याण कामना के शब्द सुनकर गाली देने वाला या गाली-डांट-फटकार सुनकर आशीर्वाद देने वाला? क्या आप भिखारी से भी गये-बीते हैं? एक भिखारी जितनी सभ्यता और सहनशीलता आप में नहीं रह गयी है। अरे, भिखारी को कुछ नहीं देना है तो मत

दो, कोई आपको देने के लिए विवश नहीं कर रहा है, और न भिखारी जबर्दस्ती आपका कुछ छीन रहा है, उसे गाली तो मत दो, उसका तिरस्कार-अपमान तो मत करो। प्यार-प्रेम-स्नेह से कह दो कि मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकता या नहीं दूंगा। भिखारी को और कुछ दे सको या न दे सको प्यार-प्रेम के दो मीठे शब्द तो दे सकते हो। इससे आपकी मनुष्यता बची रह जायेगी और आपके प्यार भरे शब्द सुनकर भिखारी का मन प्रसन्न हो जायेगा।

बात किसी भिखारी की ही नहीं है, बात हर उस जरूरतमंद मनुष्य की है जो मजबूरीवश आपसे कुछ मांग रहा है। जो भी जिस किसी को देना हो प्यार से, आदर-सम्मान से दो। इसे अपना सौभाग्य समझें कि आज आपको किसी जरूरतमंद व्यक्ति की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। लोग सेवा करने के लिए कहां-कहां जाते हैं। सेवा का अवसर खोजते रहते हैं और आपको घर बैठे अनायास ही सेवा का अवसर मिल गया है। इस अवसर का सदुपयोग करें और जो भी देना है प्यार से, आदर भाव से दें। यदि नहीं देना है या नहीं दे सकते तो प्यार से कह दो। किसी का तिरस्कार-अपमान करके अपने मन को मलिन तो न बनायें।

यह कहना कि किसी भिखारी या जरूरतमंद को कुछ देना ईश्वर के न्याय में बाधा डालना है, घोर अहंकार एवं मन की मलिनता तथा क्रूरता का परिचय देना है। ऐसा कहने वाला आदमी बाहरी धन (रुपये-पैसे) से संपन्न हो सकता है, किन्तु वह मन से अत्यंत दरिद्र, विपन्न एवं कंगाल है। वह मानसिक सुख, शांति, प्रसन्नता का अनुभव कभी नहीं कर सकता। जायज-नाजायज तरीके से पैसा बटोरकर आदमी बाहरी धन से संपन्न हो सकता है, किन्तु वह भीतर से सदैव विपन्न ही बना रहता है। और जो मन से विपन्न है वह सुख की नींद कहां सो सकता है!

आपका यह विश्वास है कि ईश्वर कण-कण में व्याप्त है और दुनिया के सभी प्राणी ईश्वर की ही संतान हैं। यदि ईश्वर कण-कण में व्याप्त है तो उस भिखारी में भी व्याप्त होगा और वह भिखारी भी तो ईश्वर की ही

संतान है इस नियम से किसी भिखारी का अपमान-तिरस्कार करना ईश्वर का या ईश्वर की संतान का ही अपमान-तिरस्कार करना हुआ। एक तरफ ईश्वर की भक्ति और दूसरी तरफ ईश्वर का अपमान—दोनों में कितना विरोध! जरा ठण्डे दिल से अपनी ईश्वर-भक्ति पर विचार करें तो पता चलेगा कि आप कितनी बड़ी गलती कर रहे हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि भिखारी को भोजन दे देना तो ठीक है क्योंकि इससे उसकी भूख मिट जायेगी, किन्तु पैसा नहीं देना चाहिए, क्योंकि यदि भिखारी उस पैसे से बीड़ी-सिगरेट-गुटखा, शराब, अंडा, मांस आदि खरीदकर पीये-खायेगा तो उसका पाप पैसा देने वाले को पड़ेगा। इसके विपरीत कुछ धार्मिक कहलाने वाले लोग कहते हैं कि घर में या किसी मठ-आश्रम में यदि भोजन बच जाये तो या तो उसे जानवरों को खिला देना चाहिए या घूर-कचरे में फेंक देना चाहिए किन्तु किसी भिखारी, नौकर या अन्य अभावग्रस्त भूखों को नहीं देना चाहिए क्योंकि उस भोजन को खाकर यदि वे कुछ पापकर्म करेंगे तो उसका फल हमें पड़ेगा। ऐसे हृदयहीन लोगों को सोचना चाहिए कि वे अपने सगे-संबंधी या परिवार में किसी को पैसा देते हैं तो क्या वे सबके सब उसका सदुपयोग ही करते हैं? क्या उनमें से कोई उस पैसे से बीड़ी-सिगरेट या ऐसी अन्य चीजें खरीदकर नहीं खाते-पीते। तब फिर उनको पैसा क्यों देते हैं। आपके घर में या मठ-आश्रम में जो भोजन करते हैं क्या वे सबके सब पूर्ण शुद्ध सदाचारी, धर्मात्मा और पुण्यात्मा ही होते हैं। उनमें कभी कोई गलत काम नहीं करते। फिर यह नियम किसी भिखारी या अन्य अभावग्रस्त लोगों के लिए ही क्यों लागू करते हो।

आपके दिये पैसे का कोई दुरुपयोग करता है तो उसका जिम्मेदार वह है न कि आप। हां, यदि आपको पहले से पता है कि जो आपसे पैसा मांग रहा है वह आदमी गलत स्वभाव-आचरण वाला है और आपके दिये पैसे का वह दुरुपयोग करेगा तो ऐसी स्थिति में आप उसे पैसा न दें। परंतु यदि आपको पता नहीं है तो कोई भिखारी या अन्य अभावग्रस्त जो आपसे मांग रहा

है उसकी सहायता अवश्य करें। बचे हुए भोजन को किसी भिखारी या गरीब को खिलाना पाप नहीं पुण्य है। पाप तो है उस बचे भोजन को किसी जरूरतमंद भूखे गरीब-नौकर को न खिलाकर जानवरों को खिला देना या घूर-कचरे में फेंक देना। फिर भी कोई ऐसा पाप करके अपने को धार्मिक या पुण्यात्मा मानता है तो उसे अपने धर्म और पुण्य की नये सिरे से जांच-परख करने की आवश्यकता है।

खास बात तो है किसी मांगने वाले को देने या न देने की और देते हैं तो किस तरह से। यह पहले ही कहा गया है कि कुछ लोगों ने समर्थ-सक्षम होते हुए भी भीख मांगने को अपना पेशा बना लिया है। ऐसे लोग समाज के अपराधी हैं, परन्तु कुछ लोगों के लिए भीख मांगना मजबूरी है, ऐसे लोगों को कुछ न देना उलटे उन्हें गाली देना या उनका तिरस्कार-अपमान करना भी एक प्रकार का अपराध है। लेकिन यह कैसे जाना जाये कि कौन पेशेवर भिखारी है और कौन मजबूरीवश। अतः कोई भिखारी आपसे कुछ मांगता है और आप सक्षम हैं तो जरूर कुछ दें और जो देना है प्रेम से, श्रद्धा से दें और यदि आप कुछ देने की स्थिति में नहीं हैं तो प्रेम से कह दें कि इस समय देने के लिए कुछ नहीं है और ऐसा नहीं भी कहना चाहते हैं तो मौन रह जायें। उसे न तो गाली दें और न दुत्कारें और न उसका अपमान-तिरस्कार करें। यह समझें कि वह भी आपके जैसा एक जीता-जागता इंसान है। मूल रूप में आप में और उसमें कोई अंतर नहीं है। जो अंतर है वह बाहरी है।

हो सकता है आपके दिये दो-चार रुपये या एक-दो खुराक भोजन किसी की तकदीर ही बदल दे। इसलिए किसी भिखारी, गरीब या अभावग्रस्त, जो आपसे मांग रहा है उसे कुछ अवश्य दें और देने की आदत बनायें। यह प्रकृति का नियम है कि जो दिया जाता है वह कभी-न-कभी लौटकर मिलता जरूर है। इसलिए दूसरों के लिए नहीं अपितु अपने लिए दें, वह भी प्रेम और सम्मान पूर्वक दें ताकि जब वह लौटकर मिले तो आपको कष्ट न हो।

—धर्मेन्द्र दास

अकाट्य कबीर

लेखक—डॉ. सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'

कबीर के जन्म काल, संवत, स्थान के साथ-साथ उनके माता-पिता, उनकी जाति, उनके पठित-अपठित होने तथा वैष्णव, संत, भक्त, अद्वैतवादी, सगुणोपासक, निर्गुणोपासक स्वरूप को लेकर शुरू से आज तक उनके आलोचकों तथा समीक्षकों के बीच विवाद और मतभेद कायम है। लेकिन कबीर का एक भी कथन लिखित या अलिखित तथा दोहा, शब्द, रमैनी, साखी, पद आदि को गलत (काट्य) नहीं ठहराया गया है। विद्वता के विष से मातल तथाकथित बुद्धिजीवियों ने अधिक से अधिक उन्हें सगुणोपासक या निर्गुणोपासक सिद्ध करने का शीर्षासन भर किया है। लेकिन आज तक एक भी ऐसा विद्वान नहीं मिला जो कबीर के विचार को किसी भी कोण से गलत या भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध कर सके। इस तरह स्पष्ट है कि कबीर अकाट्य हैं।

कबीर का जन्म किसी तिथि या वार को हुआ हो, हुआ तो, किसी भी सन्-संवत में हुआ हो, हुआ तो, माता-पिता जुलाहे रहे हों या बाभन, थे तो, इसको लेकर बहस का औचित्य क्या है? उनके जुलाहा या बाभन होने से उनके चिंतनों तथा दर्शनों को प्रभावित या अप्रभावित करने का प्रयास क्या पागलपन या षड्यन्त्र नहीं है? जुलाहा कहकर कुछ ने कबीर को दलितोद्धारक कहा, बाभन कहकर बहुतों ने उन्हें हिन्दू धर्म का पृष्ठपोषक कहा। क्यों कहा? ऐसा कहने वालों ने वक्त के साथ-साथ समाज तथा धर्म को गुमराह करने का कुप्रयास भर किया है। कबीर को लेकर विचार तो यह होना चाहिए था कि उन्होंने क्या-क्या गलत और क्या-क्या सही कहा। लेकिन कोई भी, कहीं भी कबीर की गलती उजागर नहीं कर सका। मतलब कबीर आद्यांत सही हैं। कबीर को कहीं गलत कहा नहीं जा सका। इसका अर्थ कबीर अकाट्य हैं।

कबीर के विचार ही नहीं, उनके भगवान भी अविभाज्य हैं। कबीर कहीं भी भगवान को विभाजित नहीं करते। संभवतः कबीर विश्व का अकेला व्यक्ति हैं

जिन्हें भगवान की एकता में आद्यांत-निर्भीत विश्वास है। भगवान के अस्तित्व तथा स्वरूप को लेकर वे कहीं भी संदेह या भ्रम की स्थिति में नहीं हैं। यह कबीर की अनोखी तथा अद्भुत विशेषता है। और वही अडिग धारणावृत्ति कबीर की पूंजी है। जब कबीर का इष्ट ही अविभाज्य है तो कबीर दर्शन के विचार विभाज्य कैसे हो सकते हैं? आज कबीर दर्शन के इसी विलक्षण गुण को सर्वतोभावेन स्वीकार करने की आवश्यकता है।

कबीर को समाज सुधारक, हिन्दू धर्म का उद्धारक, अहिंसा का एडवोकेट, पुस्तकीय ज्ञान का विरोधी, उलटबांसी वक्ता, ज्ञान की आंधी लानेवाला बवण्डर, दलितोद्धारक मसीहा और न जाने क्या-क्या ठहराने तथा सिद्ध करने का प्रयास किया जाता रहा है। लेकिन कबीर को विरल मानवतावादी, अद्वितीय एकेश्वरवादी, रियल स्वतंत्रताप्रेमी, वास्तविक सामाजिक वास्तुविद, विशिष्ट समन्वयवादी, अतुलनीय मार्गप्रदर्शक तथा अभूतपूर्व अखिलविश्व धर्मोपदेशक क्यों नहीं माना जाता है? क्या कबीर से दूजा आज तक एक भी ऐसा चिंतक सह धर्मोपदेशक हुआ है जिसने अखिल विश्व की मानवता के लिए एकल धर्म एवं साधना पद्धति की प्रशस्ति एवं स्वीकृति की बात कही है? लगभग विश्व के तमाम धर्मों के धर्मोपदेशकों ने धर्म तथा ईश्वर के सम्बन्ध में अपना-अपना अलग-अलग मत दिया है। केवल कबीर एकमात्र कबीर हैं जो कहते हैं—

ना मैं हिन्दू न मैं तूरक ना जैनी अंग्रेज।

सुमन संवारत रहत नित अखिल बिहारी सेज॥

शेष धर्म तथा उनके उपदेशकों ने तो अपने धर्म को दूसरे से श्रेष्ठ तथा अपने भगवान को दूसरे से अधिक वरेण्य सिद्ध करने का शीर्षासन भर ही किया है। कबीर की विश्व व्यापक दृष्टि की अवहेलना कर विद्वानों ने उन्हें हिन्दू तथा मुसलमान को फटकारने वाला फक्कड़ ही अधिक माना है। फिर जैनी और अंग्रेज की खिलाफत कबीर क्यों करते हैं? इसलिए कि वे मानते हैं

मानव को जाति की क्यारी में बांटने वाले कारीगर भगवान को भी काटने की कसरत मात्र कर रहे हैं। वे भगवान की एकता में विश्वास नहीं कर रहे हैं तथा मानव को मुक्त नहीं होने देने का षड्यन्त्र कर रहे हैं। इसलिए कबीर सभी ढोंगियों की पोल खोलते हैं। कहते हैं—

जोगी गोरख गोरख करे, हिन्दू राम नाम उच्चारै।
मुसलमान कहे एक खुदाई, कबीर के स्वामी घटि-घटि समाई॥

जितने घट हैं, सबमें एक ही धातु की बनी आत्मा है। प्राकृतितः सभी घटों में समधातु निर्मित परमात्मा का निवास है। कबीर ने ऐसा कहकर क्या गलत या उलटा कहा कि उन्हें उलटबांसी वक्ता घोषित कर दिया। 'जो तू बाभन बाभनी जाया, आन बाट ते काहे न आया' कहकर कबीर ने कौन-सा अपराध कर दिया कि उन्हें गाली वक्ता सिद्ध कर दिया गया? जाति व्यवस्था का क्या सर्वमान्य या समाजशास्त्रीय-वैज्ञानिक प्रमाण है कि मानवों की एक जाति कहने वाले कबीर को काफिर कह दिया गया? सृष्टि में जो आया है, उसमें कुछ को स्वामी और बहुतों को गुलाम होने का संविधान किसने लिख दिया—कि इसको गलत कहने वाले कबीर को ही गलत कह दिया गया? अवतार लेने वाले भगवानों की क्या पहचान है कि इसे कपोल कल्पना कहने वाले कबीर को धर्मान्ध कह दिया गया? सारे विश्व और ब्रह्माण्ड का सृजेता एक है—कहकर कबीर ने किस व्यवस्था को बरबाद किया की उन्हें व्यवस्था विद्रोही करार दिया गया? नैसर्गिकता के नियम में विश्वास करने के लिए प्रेरित करने वाले कबीर ने मानवता का कौन-सा अपकार किया है कि उन्हें आज भी मानव मात्र मानने के बदले जुलाहा या ब्राह्मण का पुत्र ठहराने के लिए बौद्धिक षड्यन्त्र किया जा रहा है?

अकाट्य कबीर को काटने का कोई षड्यन्त्र सिद्ध होने वाला नहीं है। समय के सिन्धु में अब सत्य का पानी बहुत जमा हो चुका है। जिन्हें अब भी संदेह है वे कबीर के निम्न देशनाओं में एकत्व, समत्व तथा सहजत्व का दर्शन कर सकते हैं—

बेहद अगाधी पीव है, ये सब हद के जीव।
जे नर राते हद्य से, कधी न पावे पीव॥
हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर।
हद बेहद की गम लखै, तासे पीव हजूर॥
हद बंधा बेहद रमै, पल-पल देखे नूर।
मनुवां अहं ले राखिया, (जहं) बाजे अनहद तूर॥
हद्य छाड़ि बेहद गया, सुन्न किया अस्थान।
मुनि जन जान न पावहीं, तहां लिया बिसराम॥
हद्य छाड़ि बेहद गया, रहा निरंतर होय।
बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय॥
हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिं।
बेहद की गम होएगी, तब कछु कथना काहिं॥
हद में रहे सो मानवी, बेहद रहे सो साध।
हद बेहद दोऊ तजे, तिन का मता अगाध॥
हद बेहद दोऊ तजी, अबरन किया मिलान।
कह कबीर ता दास पर, वारों सकल जहान॥
जहं हरख सोक ब्यापै नहीं, चल हंसा वा देस।
कह कबीर गुरुनाम गहो, छाड़ि सकल भ्रम भेस॥

स्पष्ट है कि कबीर का दर्शन और चिंतन दोनों ही अकाट्य तथा अविभाज्य इसलिए हैं, क्योंकि उनका ध्येय भी अकाट्य तथा अविभाज्य है। कबीर ने एक नहीं, अनेक प्रमाण के सहारे, सौ नहीं हजारों दृष्टान्तों के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर एक है, अकाट्य है तथा अविभाज्य है। इस ईश्वर की अभ्यर्थना में उच्चरित कबीर के सभी भाव, विभाव तथा अनुभाव भी स्वभावतः अकाट्य हैं।

और इस तरह के अगणित अकाट्य विचार कबीर के हैं। इनको काटने या गलत ठहराने या फिर आलोचना करने का अधिकार सबको है। लेकिन कबीर के इन वचनावलियों को लेकर आज तक कोई शंका या संदेह क्यों नहीं उत्पन्न किया गया है? ऐसा नहीं है कि कबीर कथन को गलत या भ्रामक सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया गया इसलिए ऐसी स्थिति है! सच यह है कि संसार के सभी विद्याधर हरचंद कोशिश करके भी कबीर के एक शब्द को भी गलत नहीं सिद्ध कर पाने की

विवशतावश अपना-अपना मुंह बंद किये बैठे हैं। यह प्रतिपादित करता है कि कबीर के दर्शन, चिंतन, मनन, मंतव्य, अनुभव विवरण सबके सब अकाट्य हैं।

कबीर की वैचारिक दृढ़ता तथा अकाट्य धारणा को देखकर ही उनके धूर आलोचकों में एक अयोध्या सिंह हरिऔध को कहना पड़ता है कि 'कबीर साहब एकेश्वरवाद, साम्यवाद, भक्तिवाद, जन्मान्तरवाद, अहिंसावाद और संसार की असारता के प्रतिपादक एवं मायावाद, अवतारवाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा और वर्णाश्रम धर्म के विरोधी हैं।' मायावाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड आदि के अनुकूल कुछ कहते उनको कदाचित ही देखा जाता है, वह इन विचारों के विरोधी हैं। कबीर के सिद्धान्त इसलिए अकाट्य हैं क्योंकि उन्होंने अपनी बात को कहने के लिए नकल वृत्ति का अनुसरण नहीं किया। धार्मिक ग्रन्थों में वैचारिक विभेद हैं। उसका सहारा लेने वाला भेदभाव का शिकार होकर ही रहता है। इसलिए उन्हें किसी प्राचीन धर्मग्रन्थ की सहायता अभिप्रेत थी नहीं। परम्परा का निर्वाह तो वह करता है जिसका कुछ न कुछ स्वार्थ होता है, जो डरता है, जो प्रशंसा अथवा मान का भूखा रहता है। कबीर तो इस सबसे परे थे। इसलिए उन्होंने अपनी जिह्वा को तलवार बनाकर, जो सत्य था, वही कहा। जो अकाट्य था, उसी का प्रतिपादन किया और जो सार्वभौम था, उसी की वकालत की।

कुछ कहते हैं कबीर ज्ञान के हाथी पर चढ़े थे, पर सहज का दुलीचा डाले बिना नहीं, भक्ति के मन्दिर में प्रविष्ट हुए थे, पर खाला का घर समझकर नहीं। बाह्याचार का खण्डन करते थे, पर निरुद्देश्य आक्रमण के मंशा से नहीं। भगवद् विरह की आंच में तपते थे, पर आंखों में आंसू भरकर नहीं, रोम-रोम व्यापी राम को पुकारते थे, पर बालकोचित मचलन मात्र के साथ नहीं। वे अकारण सामाजिक विभिन्नता तथा विभेद को कायम रखने वालों को माफी देने के पक्ष में नहीं हैं। उनका प्रयोजन तो मात्र अखण्ड से अखण्ड को सिद्ध करना है। निरर्थक खण्डवाद तथा पाखण्डवाद से तो

उनका पुश्तैनी वैर है। वे तो सारतत्त्व को सहज रूप में ग्रहण करने तथा कराने के हामी हैं।

कबीर नाम के लिए अविभाज्य ईश्वर के उन नामों का भी प्रयोग करते हैं जिनका प्रयोग हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख, बौद्ध, जैन, वेदांती, नाथपंथी आदि करते हैं लेकिन काम के लिए तो मात्र इतना ही कहा कि— "पिंड में हरि, हरि में पिंड है।" आत्मा के विषय में कहा— 'न तो यह मनुष्य है, न देव है, न योगी है, न यती है, न अवधूत है, न माता है, न पिता है, न पुत्र है, न गृही है, न उदासी है, न राजा है, न रंक है, न ब्राह्मण है, न बड़ई है, न तपस्वी है, न शेष है यह तो अखण्ड का अखण्ड स्वरूप मात्र है। यह उसी प्रकार अमित है जिस तरह का मजीठा रंग। तत्त्व मूलतः और तत्त्वतः वही है जो परमतत्त्व है। उसमें दीख पड़ने वाली सारी विभिन्नताएं मिथ्या और भ्रामक हैं।' इस प्रकार कबीर का परमतत्त्व अकाट्य तथा अविभाज्य है।

कबीर का यह अकाट्य कथन नहीं तो और क्या है कि— "सृष्टिकर्ता का उद्देश्य प्रचलित वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों को महत्त्व देना होता, तो वह इनकी सम्यक पहचान के लिए इनके ललाटों पर तीन रेखाएं खींचकर ही इन्हें उत्पन्न करता। ब्राह्मणों की धमनियों में कभी दूध नहीं बहा करता जहां शूद्रों की नसों में केवल रक्त बहा करता है।" कबीर को सभी मनुष्यों के एक ही मूल से उत्पन्न होने में विश्वास है। सभी कोई एक ही ज्योति से उत्पन्न हैं तो फिर ब्राह्मण और शूद्र का वर्गीकरण कहां तक न्याय संगत है। इस तरह कबीर उत्पन्न और उत्पन्नकर्ता में विभेद नहीं करते। मानते हैं—

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, ये तत्व समझे सो ग्यानी॥

कबीर ने विभिन्न तरह के योग के द्वारा आत्मतत्त्व तथा सारतत्त्व को प्राप्त करने के प्रयास को पानी पर लकीर खींचना कहा। योग से शरीर निरोग होता है, भगवान की प्राप्ति नहीं है। वह तो सहज है और सहजाभ्यास से ही मिलता है। कबीर का मंतव्य है—

धोखा प्राणायाम है, धोखा सारे योग।
धोखा कर्म विडम्बना, धोखा अणिमा भोग।

पंचमुद्रा धोखा हवै, धोखा सुषमनि घाट।
कहैं कबीर गुरु बिना, मिलै न सत्य को बाट।

तत्त्वार्थ सभी प्रकार के प्राणायाम धोखा हैं, क्योंकि परमात्मा प्राणायाम के द्वारा प्राप्त नहीं होते। प्राण, प्रकृति के सूक्ष्म अंशों से निर्मित है। प्रभु प्रकृति पार हैं। राजयोग, मंत्रयोग, हठयोग, लययोग, चांचरी, भूचरी, अगोचरी, उन्मुनि, खेचरी एवं अन्य सभी योग परमात्मा प्राप्ति के साधन नहीं होने के कारण धोखा हैं और प्राकृतिक व्यापार हैं। विविध प्रकार के कर्म और अणिमादि सभी योग माया के जाल हैं। सुषमना द्वारा अन्दर मन को लगाना प्राकृतिक योग है। प्रभु प्रकृति पार है तो वह प्राप्त भी अप्राकृतिक साधनों से ही होगा। इस साधन का ज्ञान बिरले सद्गुरु को होता है। कबीर भवतपितों को भवपाश से मुक्त होने के लिए मिथ्या कर्मकांडों तथा भ्रमजालों से मुक्त होने की सलाह देते हैं। विश्व प्रचलित तमाम धर्मों के निहितार्थों का अध्ययन-मनन करने से कबीर अपने मंतव्य तथा निष्कर्ष के साथ अकाट्य प्रमाणित होते हैं, क्योंकि ईश्वर की प्राप्ति प्रपंच या मिथ्याडम्बर से नहीं, सहज, सत्य की स्वीकृति तथा परमतत्त्व की अनुभूति से होती है। अर्थात्—

“चेतन साधन प्रभु मिलें, चेतन चेतन पाय,
मन प्रज्ञा वाणी नहीं, अंतर अंतर जाय।”

कबीर ने परमतत्त्व से सम्बन्ध स्थापित कराने वाले जिस सहज तत्त्व का प्रतिपादन किया उसकी आत्मा प्रेम है। कह सकते हैं कि प्रेम ही कबीर का जीवन एवं भक्ति पथ है। कबीर प्रेम करने की कला सीखने पर जोर देते हैं। और मायिक प्रेम करने वालों को माया रूपी वेश्या का भडूआई कहते हैं। यह सुनने वालों को विरोधाभासी लगता है। लेकिन कबीर कभी द्वन्द्व में नहीं रहते और न दूसरों को रखना चाहते हैं। स्पष्ट करते हैं स्थूल आंखों से जितने दृश्यों को देखते हो और उससे प्रेम करते हो यह धोखा है। दृश्य माया है। विश्वास न हो तो विचार कर देख लो, जिससे प्रेम किया, क्या उसमें एक भी स्थिर रहा या तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान

किया। नहीं तो क्या मिला। दुख, अफसोस, पछतावा, पीड़ा। फिर यह प्रेम कैसे हुआ? भला प्रेम करने से पीड़ा होती है। फिर पीड़ा हो रही है तो निश्चय ही यह प्रेम नहीं, पीड़ा प्रसविनी माया है।

प्रेम केवल प्रेमनिधि से करो। वह महाप्रेमी है। वह प्रेम का प्रतिदान प्रेम से ही करता है, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त दूसरी उसकी कोई पूंजी है ही नहीं। लेकिन उसके प्रेम में दृढ़ होना होगा।

‘छनहि चढ़ै छिन उतरै, सो तो प्रेम न होय।

अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय।”

यह स्थिति लौकिक प्रेम के साथ निश्चित रूप से उत्पन्न होती है। इस तरह के प्रेम का वाहक मन होता है। मन माया का वरद पुत्र है। मानव को मदारी बनाये रखना इसका एकसूत्री काम है। बंदर बनाकर आदमी को एक डाल से दूसरी डाल पर कूदाता रहता है। तथा खुद मौज मनाता रहता है। कबीर मन के इस मैजिक से सावधान करते हैं। कहते हैं—

“मन पंछी तबलगि उड़ै, विषय बासना माहिं।

प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आवै नाहिं।”

मैना रूपी प्रेम तो मन की प्रेमिका है। भला यह महाप्रेमी से मुलाकात क्यों होने देगी? महाप्रेमी से मुलाकात तो बाज रूपी प्रेम ही करा सकता है, क्योंकि उसमें माया रूपी मैना को मारने की शक्ति है तथा आत्मा को परमात्मा की भक्ति करने लायक बनाने की युक्ति है। यहां यह समझ लेना भ्रांति होगी कि महाप्रेमी से प्रेम करने का कड़वा अनुभव होता है। नहीं। शुरू में माया प्रभावित जीवन को ऐसा लग सकता है। लेकिन एक बार जब वह इस पथ पर बढ़ चलता है तो सर्वत्र उसे मीठा ही मीठा की अनुभूति होती है। खुद प्रतीत होने लगता—

“पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।

अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात।”

जीव को काग से हंस बनने में कठिनाई होती है। आसानी से जब वेश्या नहीं मिलती तो उर्वशी को प्राप्त करने के लिए तो कठिनाई का सामना करना ही पड़ेगा।

इसलिए कबीर समस्त प्रकार के वितंडावाद तथा विभ्रमवाद के तिरस्कार की सलाह देते हैं। माया, प्रपंच तथा मोह-तृष्णा से मुक्त होने की बात कहते हैं। प्रेम पवित्र से करने की सीख देते हैं। अपवित्र से प्रेम करने पर पापपंक में फंसना पड़ता है। जगहंसाई होती है सो अलग। इसलिए काग मन को हंस बनाना होगा। गूहडोबरी में नहाने के बदले प्रेमगंगा में स्नान करना होगा।

“कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरषा आइ।
अंतरि भीगी आत्मा, हरी भई बनराइ॥”

समस्त विषयों के परित्याग के बाद यह स्थिति उत्पन्न होती है। विषयों के त्याग का फलितार्थ जीव का रिक्तहस्त हो जाना नहीं है। वस्तुतः विषयों से उपरम होने पर ही उसे वास्तविक एवं सात्त्विक विषय से साक्षात्कार होता है। कैसे—

“कबीरा मन मिरतक भया, दुर्बल भया सरीर।
पाछे लागे हरि फिरै, कहत कबीर-कबीर।”

केवल हरि ही एकमात्र ऐसा प्रेमी है जो अहर्निश साथ रहता है। एक बार जो उसे प्रेम से पुकार ले वह उसी का नाम रटने लगता है। केवल प्रेमी ही परमात्मा का नाम नहीं जपता, परमात्मा भी अपने प्रेमी की माला जपता रहता है। कहेंगे ऐसा तो प्रेमिका भी करती है। कब तक? जब तक उसे लैंगिक सुख की भूख रहती है। फिर भी चन्द्रमुखी से ज्वालामुखी बन जाती है। लेकिन महाप्रेमी परमात्मा नाता जोड़कर तोड़ना नहीं जानता। छोड़ना नहीं जानता। आप जानते हैं—एक बार जो उससे प्रेम का नाता जोड़ लेता है, उसके चाहने पर भी वह उसे मुक्त नहीं करता। परमात्मा प्रेमी की देह चुम्बक का निर्मित है। माटी निर्मित महाठगनी से मुक्त होने पर ही पारस रूपी परमात्मा प्रेमी का दर्शन होता है। कबीर का यह मत क्या अकाट्य नहीं है? क्या सहज-सुगम, सर्वजनीन तथा सब के लिए नहीं है? इसमें नस्ल, वर्ण, वर्ग, रंग के आधार पर विभेद कहां है। फिर यह सहज कैसे नहीं है? क्या इससे आप असहमत हैं? नहीं! तो कबीर विभाजनपसंद कहां हैं!

कबीर आत्मवत सर्वभूतेषु वचन को सही मानते हैं लेकिन उसके वाचकों को गाली देते हैं। यह दोहरी नीति

क्यों? क्योंकि कबीर ने देखा कि इस सूत्र वाक्य का जाप करने वाले चतुर्वर्ण्य व्यवस्था, छूत-अछूत, ऊंच-नीच, जाति-कुजाति, हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई की दीवार को तोड़ने का नहीं जोड़ने का काम करते हैं। दिन में प्रवचन करते हैं और रात में कामप्रवीणाओं को पार्श्व में रखते हैं। त्याग का उपदेश करते हैं और भोग-भवन में विहार करते हैं। योग का अभ्यास कराते हैं और रोग का प्रसाद बांटते हैं। कबीर आडम्बरहीन होने का मंत्र देते हैं और बाहर-भीतर एक होने की सलाह देते हैं। गलत क्या कहते हैं?

लोग कहते हैं योगी भोगी नहीं होता। कबीर कहते हैं योगी ही भोगी होता है। भ्रमात्मक लगती है कबीर की बात। लेकिन कबीर भ्रम में नहीं हैं। भ्रम में डालना उनका काम नहीं है। जो भोगी नहीं हुआ वह योगी कैसा। सुख, आनन्द, परमानन्द, केवल आनन्द का भोग क्या योगी नहीं करना चाहते? इसी भोग के लिए तो जन्म-जन्मान्तर तक साधना करते रहते हैं। इसलिए कबीर सचमुच भोगी होने के लिए योगी बनने की शिक्षा देते हैं। कहते हैं—‘परमानन्द के भोग में यूं निमज्जित हो जाओ कि दूसरे किसी भी भोग को भोगने का अवकाश ही नहीं रहे। उस एक में इस तरह जलमीनवत हो जाओ कि दूसरे किसी का स्मरण नहीं रहे। उस अनुपम भोग के स्वाद में ऐसे मग्न हो जाओ कि शेष सबकुछ स्वादहीन लगे। जब तक भोगी होने की उत्कृष्ट अभिलाषा जगेगी नहीं तब तक योगी बन ही नहीं सकते हो। उस परम भोग का उपभोग करने की पात्रता विकसित करो, मात्र योगी ही नहीं, परमयोगी बन जाओगे।’

कबीर सहज पर जोर देते हैं, लोग उन्हें असहज कहते हैं। कबीर कहते हैं—‘सजावट नहीं सज्जनता, अलंकार नहीं सादगी को अपनाओ। सजावट ढोंग ही नहीं, हिंसा भी है। अलंकार स्वाभाविकता-सरलता को समाप्त करता है। स्वाभाविकता का नाश रोग, शोक और दुख का निर्माण है। शरीर पर रंग, मन पर रंग, माया पर रंग यह विजय नहीं, अपने ही साथ एक भयानक जंग है। गर्व माया है। ज्ञान तथा आत्मबोध

परमात्मा है। किसका गर्व है तुम्हें? शरीर का! तुम्हारा है? जर, जमीन, जोरू का! साथ आये थे? माया, मोह, लोभ, क्रोध, अहंकार का? अब तक कितना उपकार किये हैं तुम्हारा? नाश पर गर्व! नाशवान पर गर्व और शाश्वत से वैर। यह बुद्धिमानी है या नादानी!'

जोड़ते हैं—'ज्ञान (बोध) पर गर्व करो। ज्ञान तुम्हारा होगा। अज्ञान माया है। ज्ञान आते ही गर्व नष्ट हो जाता है। गर्व और ज्ञान साथ नहीं रह सकते। गर्व तुम्हें सबसे—प्रभु से, प्रभु की संतानों से अलग करता है। ज्ञान जोड़ता है, ईकाई को अनंत से तथा एकदेशी को अखिल विश्व से जोड़ता है। ज्ञान विराट बनाता है, गर्व छोटा कर देता है। गर्व के कारखाना में निकृष्टता का उत्पादन होता है। ज्ञान के प्रयोगशाला में महानता का पौधा विकसित होता है। लेकिन पुस्तकीय ज्ञान के गर्व में गरुड़ बने उद्धवों को कबीर ज्ञानी नहीं मानते। यदि वे ज्ञानी होते तो इंसान तथा भगवान को क्यों बांटते? यदि ज्ञानी होते शोषण का सचिवालय क्यों खोलते? ऐसे ग्रंथकारों तथा विभेदवादियों को कबीर बोंतू मानते हैं जिसका एकमात्र काम अश्लीलता प्रदर्शन तथा सुगंधित वातावरण को दुर्गन्धयुक्त बनाना होता है। कबीर शबरी को ज्ञानी मानते हैं, मीरा को ज्ञानी मानते हैं, रैदास को निराभिमानी मानते हैं। 'आप तर्क के किस तलवार से कबीर को काटेंगे!'

कबीर के कर्म, ज्ञान और भक्ति विषयक उक्त कतिपय मंतव्यों से स्पष्ट है कि वे मात्र धर्म उपदेशक नहीं हैं। प्रत्यक्ष रूप से कबीर सहजाभक्ति को श्रेष्ठ बतलाते हैं, लेकिन परोक्षतः उसकी उपलब्धि के लिए कर्म और ज्ञान के पवित्रीकरण तथा निर्मलीकरण पर जोर देते हैं। कबीर को केवल भक्त या संत मान लेना कबीर का आंशिक मूल्यांकन होगा। जो कबीर को समाज सुधारक नहीं मानते, उन्हें अपने मंतव्य में सुधार कर लेना चाहिए। कबीर का निहितार्थ यह भी है कि कर्म और ज्ञान के समन्वयीकरण तथा सहजीकरण से ही भक्ति की सहजावस्था को प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी तरह के भेद के रहते उस अभेद की अनुभूति

असंभव है। कबीर समतावाद तथा मानवतावाद पर बार-बार बल इसलिए देते हैं कि परमात्मा की अनुभूति करने की ये प्राथमिक प्राथमिकताएं हैं। ऐसा करने से मन का निर्मलीकरण होता है। दृष्टि का दोष दूर होता है। स्व का ज्ञान होता है। मिथ्या धारणा की दीवार ढहती है। आत्मबोध होता है। अहंकार मिटता है। बिना अंधकार तथा अहंकार के मिटे उसके प्रकाश का दर्शन नहीं होता है।

अतीत में राजा ऋषि के पास जाते रहे हैं, वर्तमान में शासक तथा पूंजीपति संतों के चरण में लोटते हैं। क्यों? इसी अहंकार तथा अंधकार से निवृत्ति के लिए। यह अहंकार तथा अंधकार आये कहां से? कर्म और ज्ञान की अपवित्रता की कोख से। इसलिए कबीर सभी सामाजिक बुराइयों का प्रतिवाद करते हैं। निश्चित रूप से उनका एकांतिक उद्देश्य ईश्वर का ज्ञान कराना है। लेकिन वे समाजनिरपेक्ष नहीं हैं। उनके दर्शन का एक छोर यदि परम अमृत तत्त्व से जुड़ा है तो दूसरा निश्चित रूप से समाज के शरीर से लिपटा हुआ है। भला वह संसार से सम्बन्ध विच्छेद कैसे कर सकता है! कबीर इसलिए समाज और सर्वेश्वर दोनों से जुड़े हैं, दोनों को जोड़ने का व्यापार करते हैं।

कबीर अकाट्य इसलिए हैं कि उनका कोई भी विचार आज तक काटा नहीं गया है। अकेला इसलिए हैं कि द्वंद्व की बात नहीं करते हैं। अलबेला इसलिए हैं कि झमेला मिटाने की कला जानते हैं। निराला इसलिए हैं कि भ्रम का पिटारा ढोने वालों को नंगा करते हैं। निडर इसलिए हैं कि डरने या डराने वाली बात नहीं कहते हैं। निर्भय इसलिए हैं कि भय का भ्रमजाल सृजित नहीं करते। मस्त इसलिए हैं कि संचय की सोच नहीं रखते। संतुष्ट इसलिए हैं कि शोषक नहीं हैं। मतवाला इसलिए हैं कि मतलबियों से मतलब नहीं रखते। बुलंद इसलिए हैं कि 'वाद' के गुलाम नहीं हैं। बेजोड़ इसलिए हैं क्योंकि दूसरों के विचारों से जोड़-तोड़कर कोई तिकड़म नहीं करते। सर्वग्राह्य इसलिए हैं कि किसी पक्ष विशेष से ग्रसित नहीं हैं। निर्विवाद इसलिए हैं कि विवाद खड़ा

करना उनकी फितरत नहीं है। संत इसलिए हैं क्योंकि सत्य का अंत जानते हैं। भक्त इसलिए हैं कि भगवान के वास्तविक स्वरूप का उन्हें ज्ञान है। भ्रममुक्त इसलिए हैं क्योंकि उन्हें निर्भ्रान्त का परिज्ञान हो गया है।

कबीर सभी को काटकर भी अकाट्य हैं। यह अचरज में डालने वाली बात है। जो कोई दूसरे को काटता है, कहीं न कहीं, खुद काटा जाता है। दूसरों को फंसाता है तो खुद भी एकाध बार आलोचना का शिकार होता है। लेकिन कबीर इसके अपवाद लगते हैं। उन्होंने व्यवस्था को भी कोसा, वर्ण-व्यवस्था को भी लताड़ा। हिन्दू-मुस्लिम धर्म क्या सभी धर्मों की आलोचना की। पण्डित-मुल्ला को ही नहीं जैनी-अंग्रेज को भी नहीं छोड़ा। राम-कृष्ण को ही नहीं, किसी भी अवतार को स्वीकार नहीं किया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक को माफ नहीं किया। मन्दिर-मस्जिद, गिरजा-गुरुद्वारा तक को नकारा। वेद-कितेब, कुरान-बाइबिल तक पर अंगुली उठाई। सनातन-अधुनातन सभी धर्मों को धोखा कहा। फिर भी आज अकाट्य तथा सर्वस्वीकार्य हैं। बीच में जरूर कुछ धूर्तों ने उन्हें नकारने का षड्यंत्र किया। लेकिन अपने ही हाथ से यून घायल हुए कि पानी भी नहीं मांगा। कबीर के आलोचक मर गये लेकिन कबीर जिंदा हैं। क्यों?

कबीर को नकल करने की अक्ल नहीं थी। झूठ कहने की आदत नहीं थी। लेखि में विश्वास करने की विवशता नहीं थी। ज्ञान का गरुड़ बनने की बेचैनी नहीं थी। विभेद का बिरवा लगाने की आवश्यकता नहीं थी। छद्म का संसार रचने की ललक नहीं थी। पंडित या मार्गदर्शक कहलाने की भूख नहीं थी। अहंकार का आहार करने का रोग नहीं था। धर्मों का ध्वजधारक बनने की अभिलाषा भी नहीं थी। उन्हें मात्र सत्य कहने की आदत थी। अनुभूत को व्यक्त करने की बेचैनी थी। भ्रमितों का भ्रम मिटाने की जल्दबाजी थी। जीव को उसके आविर्भाव के उद्देश्य से अवगत कराने का उद्देश्य था। मानवता की प्रतिष्ठा की पिपासा थी। अंधकार मिटाने की जवाबदेही थी। मानव के कर्तव्य का संपादन

वे हैं सद्गुरु कबीर

रचयिता—प्यारे लाल साहू

जिनकी वाणी है पत्थर की लकीर
वे हैं सद्गुरु कबीर, वे हैं सद्गुरु कबीर
काशी में जन्म लिया, मगहर में तजा शरीर
नीमा नीरू ने पाला पोसा, कहलाए दास कबीर

जिसने भ्रम भूत को दूर भगाया
ज्ञान का दीप जलाया, प्रेम का अलख जगाया
जो हैं संतों के माथे का मुकुट, तिलक और अबीर
वे हैं सद्गुरु कबीर, वे हैं सद्गुरु कबीर

अंधविश्वास, पाखंड पर जिसने किया प्रहार
गंगा की तरह पावन, निर्मल थे जिनके उद्गार
राम भजन में सुख पाया, ऐसे अलमस्त फकीर
वे हैं सद्गुरु कबीर, वे हैं सद्गुरु कबीर

घट घट वासी राम का, भेद जिसने लखाया
गुरु को गोविंद से भी, जिसने बड़ा बताया
हंसवत जिसने अलग किया, नीर और क्षीर
वे हैं सद्गुरु कबीर, वे हैं सद्गुरु कबीर

जड़ और चेतन का भेद जिसने परखाया
शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, निज स्वरूप ठहराया
मौत भी जिनको मार न सकी, ऐसे आत्मवीर
वे हैं सद्गुरु कबीर, वे हैं सद्गुरु कबीर

करने का अनुदेश था। इसलिए उन्होंने अपनी यात्रा बिना किसी संशय-संदेह या पूर्वाग्रह के प्रारम्भ की। जब कहीं राग-द्वेष था नहीं, मोह-माया से मतलब था ही नहीं, अपने-पराये का भेद करना ही नहीं था, तो द्वंद्व या छद्म की बात क्यों करते। जब सब अपना हो या कोई अपना नहीं हो तो, समस्या रह कहां जाती है। कबीर इस समस्या से मुक्त थे इसलिए जो कुछ कहा अकाट्य कहा।

(‘न बाटिये कबीर को’ से साभार)

समता का संगीत सुरीला

लेखक—श्री चन्द्रप्रभ जी महाराज

मनुष्य का मन अद्भुत है। यह संसार की विचित्रताओं में से एक है। अजब पहेली है यह। उलझ जाये तो पहेली, सुलझ जाये तो सहेली। यह मन ही है, जो मनुष्य के लिए स्वर्ग का निर्माण करता है और उसके लिए नरक का मार्ग भी खोलता है। सुख के फूल भी मन खिलाता है और दुःख के काटे भी मन ही उगाता है। प्रकाश और अन्धकार, बन्धन और मुक्ति, राग और विराग, सबका आधार—सूत्र मनुष्य का मन ही है।

हवा के जिस झोंके से दीपक बुझता है, उसी से दावानल सुगलता है। आग से भरी जिस मशाल से घरों और जंगलों का अन्धकार समाप्त होता है, उसी से बस्तियों में आग भी लगायी जा सकती है। जिस जुबान से गीत गाये जा सकते हैं, उसी जुबान से गालियाँ भी निकलती हैं। जिस दृष्टि से सौन्दर्य का रसास्वादन किया जा सकता है, वही दुष्कृत्य के लिए उतावली हो उठती है। इन सबके पीछे कोई प्रेरक तत्त्व है, तो वह मनुष्य का अपना मन है।

अच्छा मन आदमी का मित्र है, बुरा मन आदमी का शत्रु। मन ठीक रास्ते पर चले, तो मन ही मनुष्य का स्वर्ग है, मन ग़लत रास्तों पर उलझ जाये तो मन ही नरक है। मन में विश्वास जग जाये तो वही सफलता का आधार है, मन में बहम और निराशा घर कर जाये तो वही विफलता का जनक है। आपने अब तक औरों से तो दोस्ती की है, मेरा अनुरोध है आप अपने आपसे दोस्ती करें। जगत से भी मंगल मैत्री हो और स्वयं से भी मंगल मैत्री। स्वयं का उद्धार आखिर हम स्वयं ही करेंगे। याद रखिए, जो मन हमें बांधता है, भटकाता है, वही हमारे लिए मुक्ति का, शान्ति का सृजन करता है। मनुष्य का मन शान्त हो जाये, तो समता घटित हो जाती है; वहीं मनुष्य का मन मोहित हो जाये, तो ममता निर्मित हो जाती है। मनुष्य का मन जब विश्रुंखलित

और विघटित होता है, तो विषमता पैदा होती है। समता, ममता और विषमता—मन की तीन ही स्थितियाँ हैं। अखण्ड मन का नाम ममता है, मन के खण्डित होने का नाम विषमता है और मन के मिट जाने का नाम समता है।

जो मन चंचल, बदहवास और मायूस नज़र आता है अगर वही मन लीन हो जाये, मौन हो जाये, मुनित्व के अर्थ स्वयं में धारण कर ले, तो व्यक्ति के लिए स्वर्ग का निर्माण करेगा, जीवन में उत्सव घटित करेगा। तब उस स्थिति में मुक्ति और मोक्ष शब्द मात्र नहीं होंगे, अपितु रसास्वादन होगा। मरने के बाद मिलने वाली मुक्ति का कोई अर्थ नहीं है। सारे अर्थ जीते जी हैं। यदि हमारे भीतर अनुभव की कोई किरण नहीं उतरती, जीते जी मुक्ति का रसास्वादन नहीं हो सकता, तो मरने के बाद कोई गुंजाइश नहीं है। मरने के बाद किसको क्या मिला, राम जाने। अपने तो आज में विश्वास रखेंगे; जीते-जी जो मिले, वही साक्षात् है।

जितना ज़्यादा हम मन को विश्राम देंगे, हमारे भीतर उतनी ही समता घटित होती जायेगी। मन को विश्राम देने का अर्थ है अन्तर्मन में शान्ति को प्रधानता देना, अनंत शान्ति और अनंत धैर्य को जगह देना। शान्ति और आनन्द ही हमें मुक्ति की ओर ले जायेंगे।

एक सद्गुरु अपने शिष्य के साथ जंगल से गुजर रहे थे। जब वह चलते-चलते थक गये, तो पेड़ की ओट में बैठ गये। गुरु ने कहा, वत्स! प्यास लगी है। पास में ही पानी का झरना बह रहा है। उसमें से तुम पानी ले आओ। शिष्य वहां पहुंचा, तो देखा कि पानी गंदला है। क्योंकि उसमें से राहगीर और मवेशी गुजर रहे थे। शिष्य ने वापस आकर गुरु से कहा, प्रभु! पानी तो गंदला है। आप आज्ञा दें, तो कुछ ही दूरी पर एक नदी बहती है, वहां से पानी ले आऊं। सद्गुरु ने कहा, नहीं! मुझे इसी झरने का पानी पीना है। तुम फिर जाओ।

शिष्य वापस गया, तो देखा पानी अभी भी गंदा है। वह खाली हाथ वापस गुरु के पास आ गया। शिष्य ने झरने के गंदे होने की बात कही, पर गुरु ने कहा—मुझे उसी झरने का पानी पीना है, तुम वापस जाओ! तीसरी बार जब वह वहां पहुंचा, तो देखा पानी बिल्कुल साफ है, मिट्टी नीचे जम गई है। शिष्य पानी भर लाया और गुरु को पानी पिलाया।

मन को शान्त और समता को आत्मसात करने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता, वरन् सिर्फ इन्तज़ार करना पड़ता है, धीरज रखना पड़ता है। मन के भीतर विकल्प पैदा करने वाले गंदलेपन के नीचे जमने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यही ध्यान है।

मन का सरोवर शान्त हो जायेगा, यदि साक्षी-भाव जगा लो। सजग-द्रष्टा भाव को अपने में प्रकट कर लो। जिस तरह नदी के किनारे बैठकर नदी के पानी को निहारा जाता है, ठीक ऐसे ही मन में उठने वाले विकल्पों को देखा जाता है। देखना ही काफ़ी है। विकल्पों की विपश्यना करते-करते मन शान्त हो जाता है। इसका अनुभव आपने ध्यान में किया कि अगर श्वास की प्रेक्षा करते चले जाओ, अपने विकल्पों की अनुपश्यना करते चले जाओ, तो जो मन आंधी की तरह भड़कता था, दावानल की भांति सुलगता था, दीये की तरह कज्जल देता था, वही शान्त, शून्य और निर्विकार हो गया। ज़रूरत मन को शान्त करने की नहीं, ज़रूरत केवल किनारे बैठकर देखने की है, धैर्य धारण करने की है, उठते-बैठते विकल्पों को निहारने की है। ज़रूरत उस द्रष्टा, उस साक्षी को जगाने की है, जो मनुष्य मात्र के भीतर बैठा हुआ है, भीतर बैठा स्वामी!

भीतर बैठे उस स्वामी को जगाने की ज़रूरत है। व्यक्ति का मन शान्त और शून्य हो जाने पर भीतर जिस चैतन्य के जागरण का अनुभव होता है, वही सही अर्थों में अनुभव है। वह एक अलख आनन्द है। वह जीवन की एक अपूर्व गहराई है। वह अन्तर्मन में मीरा के घूंघरूओं की धिरकन है। वह अनुभव समाधि का अनुभव है। अपनी केवलता का ज्ञान ही कैवल्य-दशा है। मैंने अपने मन के सरोवर में उठने वाली तरंगों को एक किनारे बैठकर देखा है। घण्टों नदियों में उठती

लहरों की तरह भीतर की शान्ति-अशान्ति को जिया है। उसके आनन्द का रसास्वादन किया है। भीतर के कमल की पंखुरियों से झरने वाले मधु का आस्वादन और आचमन किया है। इसलिए जानता हूँ कि भीतर आनन्द क्या है, कैसे घटित हो सकता है।

भीतर का आनन्द घटित करने के लिए, भीतर में समाई विषमता को मिटाने के लिए आनन्दघन का आनन्ददायी पद है—

समता रंग रमीजै, अवधु ममता संग न कीजै॥
संपत्ति नाही नाही ममता में, रमतां राम समेटै॥
खाट-पाट तजि लाख खटाऊ, अंत खाक में लेटै॥
धन धरती में गाड़ बौरै, धूरि आप मुख लावै॥
मूषक सांप होवेगा आखर, तातै अलच्छि कहावै॥
समता रतनागर की जाई, अनुभव चन्द सुभाई॥
काल-कूट तजि भाव में श्रेणी, आप अमृत ले जाई॥
लोचन चरण सहस चतुरानन, इनतें बहुत डराई॥
आनन्दघन पुरुषोत्तम नायक, हितकरि कंठ लगाई॥

आनन्दघन कहना चाहते हैं उन सभी लोगों से, जो विषमता से उबरना चाहते हैं। विषमता का सागर समता से ही पार पाया जा सकता है। समता का रंग ही सच्चा रंग है। कबीर कहते हैं—अगर परमात्मा को उपलब्ध करना है, तो वह राम का रंग है। आनन्दघन कहते हैं कि आत्मा को उपलब्ध करना है, तो वह समता का रंग है। समता यानी शान्ति। समता के रंग में, शान्ति के रंग में रंगो।

जब तक व्यक्ति को समता की चेतना उपलब्ध नहीं होती, तब तक व्यक्ति खेत के बीच खड़ा लकड़ी के भूसे का पुतला मात्र होगा। उसके लिए स्वर्ग नहीं है। जीवन में क्रदम-दर-क्रदम अन्धकार से जूझना होगा उसे। समता तो जीवन का प्रकाश है, दिव्य अमृत है, सर्वतोभद्र औषधि है। समता, मन के शान्त हो जाने का नाम है। यह आत्मा को ही उपलब्ध हो जाने का पर्याय है। महावीर भी यही कहते हैं कि जो समता को उपलब्ध है, वही व्यक्ति सामायिक में है।

कृष्ण गीता में कहते हैं—समत्वम् योग उच्चते। समता ही व्यक्ति के लिए महान योग है। समता को ही

योग और सामायिक कहा है। समता उपलब्ध हो गयी, तो जीवन की दिव्यता आत्मसात हो गयी। ममता उपलब्ध हुई, तो मानवीयता उपलब्ध हो गयी और विषमता उपलब्ध हुई, तो पशुता उपलब्ध हुई। समता दिव्यता है, ममता मानवता है जबकि विषमता पशुता है।

समता, ममता में रूपांतरित होती है, तो वह सीमित होकर रह जाती है। ममता, समता में रूपांतरित होती है तो वह विराट रूप धारण कर लेती है। ठीक उसी तरह जिस तरह पानी का गड्ढे में बन्ध जाना समता का ममता में रूपांतरण है। और सरिता जो सागर में मिलकर विराट रूप धारण कर लेती है, यह ममता का समता में रूपांतरण है।

ममता यानी मेरा; समता यानी सबका। ममता में मेरे का आग्रह है, जबकि समता में समानता का, समरसता का आनन्द है। ममता को समता में ऐसे रूपांतरित करो कि ममता व्यक्ति को सारे संसार में विराट बना दे, सारे संसार के लिए न्यौछावर कर दे। मदर टेरेसा की ममता मात्र ममता नहीं, वरन् ममता का समता में रूपांतरण है, तभी तो वे आज विश्व के लिए विराट बनी हुई हैं। उन्हीं की तरह अपने आप को विश्व की ओर मानवता हेतु न्यौछावर करो!

कलकत्ता में एक बार क्षय रोग बड़े जोरों से फैला। ममता की प्रतिमूर्ति मटर टेरेसा रोगियों की सेवा के लिए कलकत्ता आयीं, तो लोगों ने सोचा कि टेरेसा अपनी सेवा के बदले में उनका धर्म परिवर्तन करवा लेगी। इसी भय के कारण लोगों ने टेरेसा को काफी परेशान किया, मगर ममतामयी टेरेसा अपने काम में लगी रहीं।

कलकत्ता के सबसे बड़े काली देवी के मन्दिर का पुजारी मदर टेरेसा का बड़ा विरोधी था। संयोग से पुजारी को भी क्षय रोग ने धर दबोचा। मदर टेरेसा तो वहां सेवा के लिए आयी थीं; अपने विरोध का दमन करने के लिए नहीं। वे उस पुजारी को अपने सेवा-संस्थान 'निर्मल हृदय' में ले आयीं। अपनी सेवा से उस पुजारी को नया जीवन प्रदान किया।

पुजारी जब स्वस्थ होकर बाहर आया, तो उसने विरोध करने वाले लोगों से कहा कि मैं जीवन भर इस

पत्थर की देवी की पूजा करता रहा, मगर जीती जागती देवी को देखना है, तो वह मदर टेरेसा है। हमारी ममता इस तरह से विराट रूप ले लेती है कि सारी मानवता उसकी संविभागी बन जाये। तब तो वह ममता व्यक्ति के लिए समता से भी बढ़कर है अन्यथा एक संकुचित दायरे तक सीमित रहती है।

व्यक्ति विराटता से वंचित न रहे, इसीलिए आनन्दधन सावचेत करते हैं कि 'साधो भाई समता रंग रमीजै।' दोनों ही परिस्थितियों में तटस्थता। जैसे सामाजिक व्यवस्था के लिए लेनिन ने साम्यवाद की स्थापना की, वैसे ही आनन्दधन समता की स्थापना करना चाहते हैं।

जीवन में यह बहुत स्वाभाविक है कि कब अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियां बनें। परिस्थितियां तो रथ के पहिये के समान होती हैं। पता नहीं कब कौन-सी तूली ऊपर चली जाये और कौन-सी नीचे आ जाये। जो अभी अनुकूल परिस्थिति लगती है, वही प्रतिकूल बन जाती है और प्रतिकूल अनुकूल बन जाती है।

कबीरा यह जग कुछ नहीं, खिन खारा खिन मीठ।

कल जो बैठा मंडपै, आज मसाने दीठ ॥

फिर किसका गुमान! क्षण में मीठा, क्षण में खट्टा। कल जो रंगमण्डप में खुशियां मना रहा था आज सबेरे उसे श्मशान में चिता पर पड़े पाया। अभी जो सुविधा लग रही थी, वही दुविधा लगने लगी।

समता की आवश्यकता मानव-जीवन में इसलिए है कि परिस्थितियां चाहे जैसा अपना रूप बदल लें लेकिन हर हाल में मानव आनन्दित और प्रसन्न रहे। इसीलिए समत्व-योग और सामायिक है। समझदार आदमी के सामने प्रतिकूल परिस्थितियां निर्मित हो जायेंगी, तो भी वह बड़ा मस्त रहेगा और नासमझ व्यक्ति अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद भी तनावग्रस्त और संतप्त हो जायेगा।

अमीर आदमी किसी गरीब की उपेक्षा करता है, तो यह गरीब की उपेक्षा नहीं, यह अपने-आप की उपेक्षा है। नासमझ आदमी पाकर भी रोता है और समझदार आदमी न पाकर भी खुश रहता है। व्यक्ति के जीवन में तो सहजता रहनी चाहिए। समता का

अर्थ ही सहजता है। न तेरा, न मेरा। दोनों के मध्य सहजता का वातावरण बना रहना चाहिए। सहजता और तटस्थता में ही शान्ति है, एकाग्रता है, मुक्ति का माधुर्य है।

किसी ने दो गालियां दे दीं या तारीफ़ कर दी, तो व्यक्ति को अपनी मस्ती में मस्त रहना चाहिए, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ना चाहिए। बहुत वर्ष पूर्व एक गांव में एक अविवाहित कन्या गर्भवती हो गयी। घरवालों में विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गयी। यह स्थिति होना स्वाभाविक थी। घर वालों ने कन्या को डांटा-डपटा, मारा-पीटा कि बताओ सच क्या है? यह किसका पाप है तुम्हारे पेट में? लड़की घबराई, मगर बाद में न जाने क्या सोचकर उसने कहा कि गांव के बाहर जो संत ठहरे हुए हैं, यह बच्चा उन्हीं का है। घर वालों को बड़ा आश्चर्य और क्रोध हुआ कि संत के ऐसे कृत्य हैं। वे संत के पास गये और जाकर संत को सारा वृत्तान्त सुनाया। संत मुस्कराए और कहा, 'ओह, ऐसी बात है? ठीक है।' संत ने उस कन्या व उसके पेट में पलने वाले बच्चे की जिम्मेदारी अपने सिर ले ली।

वे सब वापस घर आ गये, यह सोचकर कि चलो बला टली। संत से लड़ते-झगड़ते, तो वह कन्या को इस तरह स्वीकार नहीं करता। घर आने के पश्चात कन्या को बड़ा पश्चाताप हुआ। वह रोने लगी, तो घर वालों ने पूछा—अब क्या परेशानी है? अब तो संत ने तुम्हें स्वीकार कर लिया है। तो वह बोली—सच तो यह है कि यह बच्चा संत का नहीं अपितु पड़ोस के लड़के का है। मैंने उसका कलंक संत के ऊपर लगाया। घर वालों को भी बड़ा दुःख हुआ और संत के पास जाकर क्षमायाचना की। सारा वृत्तान्त सुना डाला, लेकिन इन दोनों ही परिस्थितियों में संत का एक ही वक्तव्य था—ओह, ऐसी बात है? तो ठीक है! अपनी तो दोनों में मौज है। तुम्हीं आरोप लगाने आये और तुम्हीं ने नकार भी दिया। मैं तो दोनों ही स्थितियों में सहज हूँ। मेरी समझ से इस शान्ति और सहजता का नाम ही सामायिक है, समता है।

संपत्ति नहीं नहीं ममता में रमतां राम समेटै।

खाट-पाट तजि लाख खटाऊ, अंत खाक में लेटै ॥

आनन्दघन कहते हैं कि ममत्व में कोई सम्पत्ति नहीं होती। ममता मनुष्य की आध्यात्मिक संपदा नहीं है। ममता में भी संसार का राग है। अब तक मेरा-मेरा करते हुए न जाने कितने राजा-महाराजा हुए, लेकिन अपने महल-महराब अंत में सभी कुछ यहीं छोड़कर खाक में समा गये। माटी में पैदा हुए और माटी में ही ढेर हो गये। मनुष्य के अतीत, वर्तमान और भविष्य—सभी राख की ढेर हैं। मनुष्य का भविष्य मात्र एक मुट्ठी राख जितना है। मनुष्य का उपयोग केवल वर्तमान में हैं, वर्तमान को जीने में है। मृत्यु के बाद केवल कर्म ही कर्ता का अनुगमन करते हैं और कोई नहीं करता। घर की स्त्रियां दहलीज तक साथ निभा सकती हैं और परिजन श्मशान तक साथ देते हैं। एक कर्म ही व्यक्ति का व्यक्तित्व है, जो मृत्यु के उपरांत भी व्यक्ति का साथ निभाता है।

कहते हैं एक संत अपने पास एक खोपड़ी रखते थे। जब भी वे अपना उपदेश देते, अपने सामने एक टेबल पर वे उस खोपड़ी को रख देते। यह खोपड़ी लोगों में चर्चा का कारण बन गयी। आखिर एक दिन राजा भी उनसे खोपड़ी रखने का कारण पूछा। संत ने कहा—राजन्! न पूछो तो ही बेहतर है। राजा ने ज़िद की, तो संत ने कहा, राजन्! एक दिन की बात थी। हम गुज़र रहे थे श्मशान से। तभी हमारे पांव से एक खोपड़ी को ठोकर लग गयी। हमने गौर से उस खोपड़ी को देखा। वह खोपड़ी एक राजा की थी। हमें लगा रे फ़कीर! जब एक राजा की खोपड़ी का यह हाल है तो तेरी खोपड़ी का तो पता ही नहीं चलेगा। बस, हमें इस खोपड़ी से जीवन का ज्ञान मिल गया तब से इस खोपड़ी को अपना गुरु बना लिया।

जैसे ही व्यक्ति को स्वयं का ज्ञान हो जाता है, मोह-मूर्च्छा टूट जाती है। फिर मेरे-तेरे का भाव गिर जाता है। ऊंच-नीच का, अपने-पराये का भेद मिट जाता है। तब रह जाती है समता, समरसता, समदर्शिता।

तट-तट रास रचाता चल,
 पनघट-पनघट गाता चल।
 प्यासी है हर गागर दृग की,
 गंगाजल ढुलकाता चल।
 कोई नहीं पराया, सारी
 धरती एक बसेरा है।
 इस सीमा में पश्चिम है, तो
 मन की पूरब डेरा है।
 श्वेतबरन या श्यामबरन हो,
 सुन्दर या कि असुन्दर हो,
 सभी मछलियां एक ताल की,
 क्या मेरा क्या तेरा है?
 गलियां गांव गुंजाता चल,
 पथ-पथ फूल बिछाता चल,
 हर दरवाजा राम-दुवारा,
 सबको शीष झुकाता चल,
 तट-तट रास रचाता चल।

हर मुण्डेर पर दीप जला दो, हर किनारे पर
 रास रचा दो, रोशनी जगमगा दो। तुम्हें केवल घर
 वालों की आंखें दिखाई देती हैं, पर धरती केवल
 घर जितनी ही नहीं है; नजर को और आगे बढ़ाओ। हर
 आंख प्यासी है। हर आंख में तुम्हारी प्रतीक्षा है।
 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कुछ ऐसा करो, कि सारी धरती
 तुम्हारा परिवार हो जाये। तुम एक घर की नहीं, घर-घर
 की यादगार हो जाओ। मुक्त गगन के पक्षी!

आनन्दधन कहते हैं कि आज जो अपने आपको
 इतना महान समझ रहे हैं, अंत में तो सबको राख ही
 होना है। जब हमारा यह शरीर मिट्टी ही है और मिट्टी ही
 होना है, तो अपनी तुच्छ अमीरी और छोटी-सी महानता
 पर गुमान क्यों? हम धन जमा करते हैं अपने बेटे-पोतों
 के लिए और यही क्रम पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता जाता है।
 आनन्दधन चेताते हैं कि मनुष्य अपनी इसी प्रवृत्ति के
 कारण ही आनेवाले जन्म में सांप, चूहा और दीमक
 बनता है। उस जमा धन की रक्षा हेतु ही वह बांबी में
 जन्म ग्रहण करता है।

मैंने पहले भी कहा कि धन साधन है; साधन की
 सार्थकता तभी है, जब उसका उपयोग हो जाये।
 संजोकर रखने से कोई फ़ायदा नहीं, सब यहीं
 छोड़ जाना है। इसी तरह शरीर का उपयोग भी लो,
 नहीं तो यह शरीर भी मिट्टी के कच्चे मकान की
 तरह पल-पल खिर रहा है। यह शरीर, यह धन
 किसी के प्राण बचाने के काम आ जाता है, तो इससे
 बड़ा, इस तुच्छ धन का सार्थक उपयोग और क्या हो
 सकेगा?

साधन, साधन है; वह साध्य नहीं। साधन का
 जितना उपयोग करोगे साधन आपको उतनी ही सार्थकता
 और प्रखरता देगा। साधन को जितना कमरे में बन्द
 रखोगे, साधन उतना ही निरर्थक होता जायेगा। जंग चढ़
 जायेगी उस पर। चलती का नाम गाड़ी, खड़ी का नाम
 खटारा। आदमी चलता रहे, कुछ करता रहे, साधन
 उपयोग में आता रहे। इसीलिए तो आनन्दधन धन को
 लक्ष्मी नहीं अलक्ष्मी कहते हैं। अगर असली पूंजी पद,
 प्रतिष्ठा और धन ही है, तो धन होने पर भी व्यक्ति
 अशांत क्यों? पद होने पर भी विक्रिप्त क्यों? पैसे से
 मिलने वाली प्रतिष्ठा और पद कोई महत्त्व नहीं रखते।
 पैसा चला जाये तो पद और प्रतिष्ठा, जिसके लिए हमारा
 सम्मान होता है, हमारे लिए ही कटु व्यंग्य बन जाते हैं।
 तब पद और प्रतिष्ठा से मोह नहीं, वरन् आत्मग्लानि
 होती है।

व्यक्ति को कभी भी किसी के द्वारा की गयी
 निन्दा और प्रशंसा की परवाह नहीं करनी चाहिए। यह
 तो दुनिया है। गधे पर बैठकर चलोगे, तो भी हंसेगी,
 गधे को कंधे पर बैठाकर चलोगे, तो भी हंसेगी। दुनिया
 का काम हंसना है। तुम अपने हिसाब से चलो, श्वान
 भले ही भौंकते रहें, गजराज उसकी कहां परवाह करता
 है। कोई तुम्हारी निन्दा-आलोचना कर बैठे, तो
 विचलित मत होना। यों समझना सुअर गली साफ़ कर
 रहे हैं।

तुमने दीवारों पर एक नाम पढ़ा होगा—जय
 गुरुदेव। मथुरा में इसका मठ है। जय गुरुदेव के सारे

शिष्य बोरी के कपड़े, टाट के कपड़े पहनते हैं। अब दुनिया हंसे तो हंसे। उन्हें उससे क्या? जैनों में दिगम्बर-परम्परा के मुनि नग्न रहते हैं। अब अगर उन्हें नंगा देखकर कोई सकुचाये, तो इससे उन्हें क्या? उन्हें तो कोई संकोच नहीं है। तुम्हें हो, तो तुम बचो।

तुम अपने व्यक्तित्व का मूल्य दुनिया की दृष्टि से आंकते हो या अपने आपकी दृष्टि से? दुनिया की दृष्टि से आंकते हो, तो आनन्दघन तुम्हारे लिए अर्थहीन हैं। ज्ञानी की दृष्टि से अपने कार्यों का मूल्यांकन करते हो, तो तुम्हें लगेगा कि तुमने जो किया है, अच्छा किया है। दुनिया लाख उसे बुरा कह ले, मगर तुम्हारे अनुभव की किरण में वह सही है। अपने आप की दृष्टि में गिरावट नहीं होनी चाहिए। दुनिया की दृष्टि की परवाह ज्ञानी तो नहीं करते।

दुनिया तो भेड़धसान है। एक कुएं में गिरा, तो बाकी भी उसी का अनुसरण करेंगे। दुनिया में सत्य का नहीं, अनुसरण का मूल्य है। यहां शृंगार पूजा जाता है, सत्य नहीं। समता का जन्म मनुष्य के अन्तर-हृदय में होता है। भीतर के क्षीरसागर में समता का भगवान निवास करता है। हिन्दू शास्त्रों की यह बहुत ही प्रसिद्ध कथा है कि जब सागर-मन्थन हुआ, तो चौदह रत्न निकले। पर सबसे पहले विष निकला, फिर अमृत निकला। इसी तरह हृदय के सागर में जब अन्तर-मन्थन होता है, तब विष और अमृत दोनों ही निकलते हैं। ऐसा नहीं कि विष का उत्पत्ति-स्थान कोई और, और अमृत का कोई और है।

अमृत कोई पदार्थ या वस्तु नहीं है। व्यक्ति के हृदय का संस्कारीकरण ही जीवन का अमृत है और संस्कारित हृदय के विकृत होने का नाम ही विष है। व्यक्ति का हृदय जब क्रोध से घिरा होता है, तो वही जहर बन जाता है; संस्कारित होता है, तो अमृत हो जाता है। हृदय के रत्नाकर में समता और शान्ति का जन्म होता है, जिस पर छाया पड़ती है आत्मिक अनुभव के चांद की। खिले हुए, मुस्कुराते हुए चांद की।

जहां अनुभव हो, वहीं पर वास्तविक आस्था पैदा होती है। तब अमृत को कहीं से लाना नहीं पड़ता। वह अपने आप भीतर प्रकट हो जाता है। मेरे लिए श्रद्धा का जितना मूल्य है, उससे ज्यादा अनुभव का है। अनुभव सम्यक ज्ञान है। अनुभव से कोई बात गुजर गयी, तो आस्था उसका परिणाम होगा। बस, सच्चे अनुभव की एक किरण उतर आये।

मैं जो कहता हूं, वह भी शब्द है। उसे तब मानिए जब वह आपका अनुभव हो जाये। जब तक मैं न बोलूं, तब तक वह अनुभव है, पर जैसे ही प्रकट हो जाता है, वह शब्द बन जाता है। मेरी बात तभी मानिये, जब वह आपके अनुभव में उतर जाये। महत्त्व मेरा और मेरी बात का नहीं, महत्त्व अनुभव और प्रयोग का है। श्रद्धा के पास जब तक अनुभव की आंख नहीं होती, तब तक श्रद्धा अंधी है। श्रद्धा तभी सही श्रद्धा बनेगी, जब उसके पास ज्ञान की, अनुभव प्रयोग और परिणाम की कोई अन्तर-दशा होगी।

‘आनन्दघन पुरुषोत्तम नायक, हितकरि कंठ लगायी’—महान् पुरुषों को अपने गले लगाओ। सद्विचार हमारे चिन्तन में हों और सद्पुरुषों का हमें सान्निध्य हो। कंठ लगाओ, गले लगाओ, अपने आलिंगन में ले लो महान् पुरुषों को, ताकि जीवन की छिछली विषमताओं से पार लग सकें। हम स्वार्थी नहीं, सच्चे प्रेम के मालिक बन सकें।

हृदय की पवित्रता और आत्मा का प्रेम ही मुक्ति का प्रकाश है। एक ऐसा प्रकाश, जहां आभार और आनन्द की चंदन-सी बौछारें बरसती हैं। एक ऐसी रंगीली होली, जिसे खेलने के लिए भगवान भी धरती पर अवतार लेते हैं।

आनन्दघन कहते हैं—‘समता रंग रमीजै।’ रंगें समता के रंग में, अपने ही रंग में, आत्मा के, परमात्मा के रंग में। चारदीवारों से बाहर आये, कोई बुला रहा है, हमें आत्मा के रंगों से रंगने के लिए, अपने में भीगने के लिए।

(साभार : आत्मा की प्यास बुझानी है तो)

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

देहाध्यास सभी मानसिक रोगों की जड़ है। तुम तो सूक्ष्मतम अविनाशी अतीन्द्रिय चेतन हो, किंतु उस अपने दिव्य स्वरूप को भूलकर स्त्री बनते हो, पुरुष बनते हो, नेता बनते हो, अधिकारी बनते हो, गुरु, महंत, आचार्य, मंडलेश्वर और जगद्गुरु बनते हो। यह सब झूट है, तुम तो निर्मल, निरामय, असंग, अद्वैत, केवल चेतन हो, जगतातीत, द्वंद्वतीत, अमल, दुखहीन, परम सुखसागर, आनंद धाम हो। तुम्हारे अस्तित्व में देह और जगत-प्रपंच है ही नहीं। तुम क्या खोजते हो? जो खोजकर पाओगे वह कूड़ा, कचड़ा और दुख होगा। सब खोजना-मानना छोड़ दो और स्वयं शेष रह जाओ। शेष ही परमानंद है। 'बसै आनंद अटारी।'

सबका अपना माना हुआ सब कुछ शून्य होना है, यह परम सत्यता है। तुम किस बात को लेकर आंदोलित होते हो? तुम्हारा अपना साम्राज्य भीतर है। सब समय अंतर्मुख रहने का प्रयास करो। फिर बिना प्रयास ही तुम अंतर्मुख रहोगे। तुम्हारा अपना तुम्हारे अलावा कुछ नहीं है। तुम ज्ञानमात्र शुद्ध चेतन हो। इसी भाव में सदैव स्थित रहने वाला सफल जीवन है। संसार की चीजों को छोड़ देने पर ही चित्त का कलह पूर्णतया मिटेगा। संसार की चीजें सब समय छुटी ही हैं। वे बराबर छुट रही हैं। एक दिन शरीर छूटने के साथ सब छुट जायेगी। इसलिए पहले से मन से सब कुछ छोड़कर अपने में मग्न हो जाओ। यही संतों का आदेश है।

संकल्पहीन रहने की दशा में रहो अथवा स्वरूप-विचार में रहो। जगत-चिंतन, जगत-वार्ता और जगत-प्रपंच से बचो। जगत का आदि-अंत नहीं। किसी का

काम पूरा नहीं होता है और मनुष्य बीच में ही चला जाता है। सफल मनुष्य वह है जिसके जीवन के कार्य पूर्ण हो गये हैं और वह देह में रहते-रहते स्वरूप-चिंतन या निर्विकल्प दशा में कालक्षेप करता है। यह धायं-धायं करने वाला संसार कभी शांत नहीं हो सकता। किंतु तुम्हारा मन शांत हो सकता है, और उसी से तुम्हारी परम शांति की स्थिति बनी रह सकती है। याद रखो, वही कुशल, बुद्धिमान और सफल जीवन है जो अंतर्मुख और शांत है।

एक ब्राह्मण मिलने आया। वह अंतर्द्वंद्व से पीड़ित था। उसने बताया "एक व्यक्ति को एक पंडित ने बताया कि तुम्हारे ऊपर देव-प्रकोप है। तुम महामृत्युंजय का जाप करवा लो। उसने मुझसे कहा। मैंने अन्य पांच ब्राह्मणों को बुलवाकर यह काम किया। उस कर्मकांड में उस व्यक्ति के बीस हजार रुपये खर्च हुए। उसने कुछ दिनों के बाद मुझसे पूछा कि महाराज, मेरा ग्रह कटा कि नहीं। मैं चिंता में हूँ कि उस साधारण आदमी के बीस हजार खर्च हुए, परंतु संदेह है कि उस पर से मौत की बला टली कि नहीं? साहेब! मैं अंतर्द्वंद्व से दुखी हूँ कि उसका काम हुआ कि नहीं?" मैंने उस ब्राह्मण से कहा कि उस व्यक्ति पर न देव का प्रकोप था और न महामृत्युंजय जाप की आवश्यकता थी। यह सब भटके हुए पंडितों का जाल है जिसमें वे जनता को फंसाकर उनका बौद्धिक और आर्थिक शोषण करते हैं। तुम ऐसे काम से बचो। यह सब महा पाप का काम है।

एक विद्यार्थी ने फोन किया कि मेरा मन मुझे बहुत परेशान कर रहा है। मैं उससे तंग आ गया हूँ। मैंने उत्तर दिया कि मैं केवल तुम्हें उपाय बता सकता हूँ। तुम्हें अपना मन स्वयं स्ववश करना होगा। मेरा मन स्ववश है, शांत है। मैं हर समय परम आनंद में रहता हूँ और तुम्हें बता रहा हूँ कि तुम भी अपना मन स्ववश करो। इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। गुरु का यह कोई वश नहीं है कि वह शिष्य के अंदर घुस जाये और उसके मन को ठीक कर दे। हर मनुष्य अहंकार और

कामना बढ़ाकर अपने मन को उद्वेगित कर रखा है। वह जब स्वयं अहंकार-कामनाएं छोड़ेगा तब मन स्ववश होगा। केवल मन स्ववश और शांत हो जाने के बाद कोई दुख नहीं रह जाता।

* * *

कुछ न चाहना मोक्ष है। भोग न चाहना। खाने-पीने में भी केवल शुद्ध, सुपाच्य, सात्त्विक और संतुलित पर ध्यान देना। इसके लिए उसमें अमुक-अमुक न चाहना। साथ के लोगों और दूर के लोगों से सम्मान-सत्कार न चाहना। निकट-दूर के लोगों से अपना अपमान-निंदा पाकर भी उनसे क्षुब्ध न होना। यह सब कुछ न रहेगा। सारा झमेला क्षणिक है। यदि इस संसार से कुछ भी चाहोगे तो पुनः इस दावानल-संसार में आना पड़ेगा। ऐसे दुख भरे संसार से पुनः मोह का बंधन बनाना घोर अविवेक है। अतएव जिसे मोक्ष, परमानंद और परम शांति इष्ट हो, वह संसार से कुछ न चाहे।

* * *

वातावरण शीतल है। मन शीतल होना आवश्यक है। हम अहंकार और कामना करके अपने मन को उलझा लेते हैं और दुख भोगते हैं, भवबंधन पुष्ट करते हैं, आगे भी भटकने के बीज बोते हैं। अहंकार और कामना पूर्णतया समाप्त कर देने पर मन शांत हो जाता है। भवसागर सूख जाता है। संसार टंडा हो जाता है। इस संसार में धूल-माटी के अलावा क्या है। हीरा तो स्वयं अंतर्ज्योति है। उसी में मेरी स्थिति है।

संसार कैसा परिवर्तनशील है। यहां कुछ भी स्थिर नहीं है। जिसके जीवन में पूर्ण शांति है, वही सफल-जीवन है। रात-दिन संसार-किताब खुली है, जो उसको नहीं पढ़ पाता है, वह कागज की किताब पढ़कर क्या पायेगा। सब कुछ नश्वर है।

* * *

आज (भाद्रपद कृष्ण द्वादश को) यह शरीर पचहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। बहुत लंबा समय इसने दिया साधना करने के लिए। अभी इसमें कोई रोग नहीं है, लेकिन आत्मा के लिए शरीर ही रोग है जिससे

यह जगत-प्रपंच सामने उपस्थित होता है जो अपने में बिलकुल नहीं है। हमें चाहिए कि इस संसार के अध्यास को बिलकुल निकालकर सब समय स्वरूपभाव में वर्तमान करें। करना शरीर के साथ है। परंतु विवेकवान का वह सरल, सहज भुने बीजवत होता है। उनकी जगत में कहीं स्पृहा नहीं होती है। हमें सदैव देह-भाव को जीतकर आत्मभाव में रहना चाहिए। किसी का कुछ नहीं रहने वाला है। इसलिए हमारे चारों तरफ जो कुछ उपस्थित है, उसे झूठा समझें और सदैव स्वरूपलीन रहें।

* * *

जब देह की आसक्ति पूर्णतया नष्ट हो जाती है, जब सब समय लगता है कि यह देह मानो है ही नहीं, तब असंग एवं केवल की स्थिति दृढ़ होती है। आज-कल में यही दशा होना है। शरीर चला जायेगा मिट्टी में। इससे हमारा कोई संबंध नहीं रहेगा। यह दशा देखकर जो आज से ही मन में ऐसी भावना में जीता है कि मानो यह शरीर नहीं है, वह विदेहभाव की दशा में रहता है। विदेह में नहीं, विदेह-भाव में रहता है। विदेह भाव का निरंतर स्मरण रखने से ही विदेह दशा मिलेगी। इस देह की आसक्ति थोड़ी भी रही, तो भवबंधन नहीं कटेगा। देह मिथ्या है। यह आज-कल में आकाश-कुसुम हो जायेगी। अतः सावधान!

* * *

देहाभिमान के परत-पर-परत हैं। उनका पूर्णतया विनाश कर देना सहज नहीं है। कितने लोग इस विषय को समझ ही नहीं पाते। जो समझ पाते हैं उनमें अधिक लोग इस पर विचार नहीं कर पाते। अधिकतम लोग अंत में बिलबिलाकर मरते हैं। पहले ही देहाभिमान को सर्वथा छोड़ देने वाला अपने स्वरूपस्थिति के अभेद्य किला में सुरक्षित हो जाता है। उसे कोई भय नहीं रहता। त्याग से ही शांति मिलती है। मन से सब कुछ को त्याग देने वाला सदा आनंदकंद हो जाता है। त्याग अपने आप हो जाने वाला है। एक दिन अचानक देह छूट जायेगी। इसलिए इसे पहले मन से त्याग देने वाला शांति पाता है। □

या दुनिया दो रोज की

सद्गुरु कबीर की एक साखी है—

या दुनिया दो रोज की, मत कर यासो हेत।

गुरु चरणन चित्त लाइये, जो पूरण सुख देत ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं—यह दुनिया दो दिनों की है, इसलिए इससे प्रेम मत करो, किन्तु दुनिया से प्रेम हटाकर गुरु के चरणों में, गुरु के भजन में, गुरु के ज्ञान में प्रेम करो जिससे सब प्रकार का पूर्ण सुख मिलता है।

पहली बात सद्गुरु कहते हैं कि यह दुनिया दो दिनों की है। तो क्या सचमुच में दुनिया दो दिनों की है। दो दिन तो कहने का एक तरीका है। दुनिया सदा से है और सदा रहेगी। दुनिया कब नहीं थी और यदि नहीं थी तो कहां से आ गई। जो चीज कहीं है ही नहीं वह आयेगी कैसे और जो है उसका विनाश कैसे होगा? “नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।” गीता में कहा गया है कि असत का भाव नहीं होता और सत का अभाव नहीं होता।

दुनिया जब नहीं थी तो आयी कहां से? कुछ लोग मानते हैं कि कभी ऐसा समय था जब दुनिया नहीं थी तब भगवान ने दुनिया बना दी। दुनिया की सृष्टि के लिए अनेक प्रकार की कल्पनाएं हैं। जितने मत-पंथ-संप्रदाय हैं उतनी कल्पनाएं हैं। लेकिन दुनिया नित्य है, अनादि-अनंत है। सदा से है, सदा रहेगी। फिर सद्गुरु क्यों कहते हैं कि “या दुनिया दो रोज की।”

उनके कहने का भाव है कि दुनिया का और हमारा संबंध थोड़े दिन का है! स्थायी संबंध नहीं है, सदा रहने वाला संबंध नहीं है। हमारे दादा, बाबा, परपाजा आज कहां हैं और उनका माना हुआ राज-काज कहां है? बड़े-बड़े राजा-महाराजा आये, एक से एक चक्रवर्ती सम्राट हुए, ना मालूम कौन-कौन दुनिया में आये आज वे कहां हैं? न तो वे हैं और न उनका माना हुआ राज-काज है। सब कुछ अतीत के गर्त में समा चुका है। क्या ऐसा ही हमारा एक दिन नहीं होगा। सद्गुरु कबीर साहेब एक पद में कहते हैं—

“दादा बाबा औ परपाजा, जिन्हके यह भुईं भांडे हो।

आंधर भये हियहु की फूटी, तिन्ह काहे सब छांडे हो।”

दादा, बाबा, परपाजा जिनकी जमीन-जायदाद थी, जो यह कहते थे हमारा घर है, परिवार है, धन है, राज-काज है, हम इतने बड़े आदमी हैं, इतने बड़े विद्वान हैं, इतने बड़े प्रतिष्ठित हैं, इन सबको लेकर जो अपने को बड़ा मानते थे, अहंकार करते थे, आज उनका क्या रह गया है? कुछ भी तो नहीं रह गया है। हम उनको खोजने भी जायें तो नहीं मिलेंगे! वे क्या उनके शरीर की हड्डी का चूरा भी नहीं मिलेगा। सब कुछ इस प्रकृति में विलीन हो चुका है। क्या ऐसा एक दिन हमारा नहीं होगा! हम कब तक रहने के लिए यहां आये हुए हैं।

देखते ही देखते रोज-रोज सब कुछ छुटता चला जाता है। हमारा बचपना खो गया। हम अपने बचपन को खोजने जायें तो कहां मिलेगा। तरुणाई खो गई, जवानी खो गई, धीरे-धीरे बुढ़ापा आ रहा है। जवानी आती है तो लोग इतराने लगते हैं, अहंकार करने लगते हैं क्योंकि जवानी में शरीर में एक उष्मा होती है, सौन्दर्य होता है, लावण्य होता है, उसमें आकर्षण होता है। शरीर के आकर्षण, सौन्दर्य, बल इनको लेकर लोग इतराने लगते हैं। अहंकार करते हैं। अहंकार करने की जरूरत नहीं है किन्तु जो मिला हुआ है उससे सेवा करने की जरूरत है।

हमारी जवानी खो गई, अब हम उसे लौटाना चाहें तो लौटेगी कैसे? खोजना चाहें तो मिलेगी कैसे? जवानी देखते-देखते चली जाती है, बुढ़ापा आ जाता है। और जवानी जाती है तो लौटकर आती नहीं है, बुढ़ापा आता है तो लौटकर जाता नहीं है। किसी की जवानी लौटी नहीं है और किसी का बुढ़ापा आया तो लौटकर वापस नहीं गया है। शरीर के साथ ही समाप्त होता है। आवश्यकता है किसी का भी अहंकार न करके उससे सेवा, साधना और कल्याण का काम करने की।

कबीर साहेब कहते हैं “या दुनिया दो रोज की।” दुनिया दो दिनों की है अर्थात् सारा संबंध क्षणिक है,

अल्पकालिक है। बचपन में हमें कितने मित्र मिले, जिनके साथ हम खेले-कूदे, क्या-क्या किये आज वे हमारे मित्र कहाँ हैं। जरा ख्याल करें पहली कक्षा में जब आप पढ़ने गये थे तो जिन बच्चों के साथ पढ़ रहे थे क्या उन बच्चों के नाम गिना सकते हैं। मुश्किल से चार-छह का नाम गिना पायेंगे। आज वे कहाँ हैं इसका भी ख्याल नहीं है।

इसी जीवन में कितनी चीजें मिलीं सब खो गईं। कितने लोग मिले, सब खो गये। कहाँ-कहाँ गये, क्या-क्या दृश्य देखे, क्या-क्या शब्द सुने, क्या-क्या खाये-पीये सब खो गये। जैसे पहले का सब कुछ खो गया, क्या ऐसे ही आज का जो कुछ दिखाई पड़ रहा है वह खोयेगा नहीं! सब कुछ तो खो जायेगा और आंख बंद होते ही सदा काल के लिए सब कुछ से हमारा संबंध कट जायेगा। न रंक की झोपड़ी रहेगी न राजा का महल और राज्य रहेगा। जिसका जो कुछ होता है वही तो उसका सब कुछ होता है। रंक के लिए झोपड़ी सब कुछ है तो राजा के लिए राज्य सब कुछ है। अपना-अपना सब कुछ सबको छोड़कर जाना पड़ता है। जब गये तो सदा काल के लिए गये। कुछ साथ नहीं जाता, सब कुछ को छोड़कर जाना पड़ता है।

महात्मा लोग उदाहरण देते हैं बातों को समझाने के लिए। तीन मित्र बैठे बात कर रहे थे। बात करते-करते एक ने कहा—भाई, आज मैं बहुत गरीबी में जीवन जी रहा हूँ, किसी प्रकार से जीवन गुजर हो रहा है लेकिन मेरे पूर्वज मेरे-जैसे गरीब नहीं थे। हमारे पूर्वज बहुत धनवान थे और आप लोगों को मालूम होना चाहिए कि मेरे दादा जी जब मरे थे तो 10 लाख की संपत्ति छोड़कर मरे थे। दूसरे ने कहा—मैं भी आज बहुत तंगी में जीवन जी रहा हूँ लेकिन मेरे पूर्वज मेरे-जैसे गरीब नहीं थे। मेरे पूर्वज भी बड़े संपन्न थे और आप लोगों को मालूम होना चाहिए कि मेरे दादा मरे थे तो 10 करोड़ की संपत्ति छोड़ कर मरे थे। तीसरा चुप था। दोनों ने पूछा—तुम बताओ, तुम्हारे दादा क्या छोड़ करके मरे थे? तीसरे ने कहा—क्या बताऊँ, बताने लायक नहीं है। दोनों ने कहा कुछ तो छोड़ करके मरे होंगे। बताओ,

बताने में क्या हर्ज है? तीसरे ने कहा—मेरे दादा मरे थे तो पूरी दुनिया को छोड़कर मरे थे। बताओ हम लोग क्या करेंगे? कुछ लेकर मरेंगे क्या? सब कुछ से सबका संबंध छूटता जा रहा है।

इसलिए सद्गुरु कहते हैं—दुनिया दो दिनों की है। इससे मोह न करो। जीवन यात्रा में जितने भी लोग मिलें हुए हैं सबसे प्रेम करें। सब अपने हैं। किससे वैर करना है। कौन पराया है। सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें। एक दूसरे के प्रति हमदर्दी रखें और मधुर व्यवहार करें। जिनसे हमारी मित्रता है उनसे भी साथ छूटना है। एक दिन न शत्रु रहेंगे न मित्र रहेंगे, न हम स्वयं रहेंगे।

हम प्रेम नहीं करते प्रेम के नाम पर मोह कर लेते हैं और यही मोह हमारे गले की फांसी बनता है, हमें दुख देता है, पीड़ित करता है। प्रेम से पीड़ा नहीं होती है। पीड़ा मोह से होती है। प्रेम से बंधन नहीं बनता है, बंधन मोह से बनता है। प्रेम सबके लिए होता है। मोह कुछ लोगों के लिए होता है। कहीं मोह होगा तो व्यवहार में गड़बड़ी आयेगी, निष्पक्षता नहीं रहेगी। कहीं भी मोह होने पर पक्षपात होगा ही। दुराव-छिपाव, छल-कपट होगा ही। इसलिए किसी से मोह न करें, सबसे प्रेम करें। मोह करके करेंगे क्या?

यदि मोह करना ही है तो राम से कर लें। राम में मोह हो जायेगा तो काम बन जायेगा। लेकिन राम में मोह कहाँ होता है? राम में मोह किसका होगा? जिसका लोगों के प्रति प्रेम होगा। कबीर साहेब तो कहते हैं—“कबीर मन तो एक है, भावे तहां लगाव। भावे गुरु की भक्ति कर, भावे विषय कमाव ॥” मन तो एक है जहां आप चाहें तहां लगावें। चाहे मन को दुनियादारी में, राग-रंग में, मोह-माया में लगायें चाहे गुरु के ज्ञान में, राम में, आत्मा में, भक्ति-साधना में लगायें। गुरु के ज्ञान में मन को लगायेंगे तो बेड़ा पार हो जायेगा, कल्याण हो जायेगा, दुख समाप्त हो जायेगा। दुनियादारी में, राग-रंग में, मोह-वैर में मन लगायेंगे तो चारों तरफ से उलझन मिलेगी, कांटे मिलेंगे, हाथ-हाथ करते-करते जीवन बीतेगा।

यद्यपि कोई दुख नहीं चाहता। दुख किसी को प्रिय नहीं है। हर आदमी अपने-अपने ढंग से दुख से बचने के लिए ही उपाय कर रहा है लेकिन भूलवश जितना उपाय करता है वह सारा का सारा दुख बढ़ाने में ही सहायक होता है। हमने और आपने जब से होश संभाला है, जब से हमारी कुछ समझ हुई है तब से आज तक क्या किये? सुख पाने के लिए और दुख घटाने के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन जरा सोचें, सुख बढ़ा है या दुख बढ़ा है, चिन्ता बढ़ी है या निश्चिन्ता, निर्भयता बढ़ी है, प्रसन्नता बढ़ी है या विषाद बढ़ा है। जीवन व्यापार तो हमारा घाटे में ही जा रहा है। क्योंकि हमें जीवन जीने का सही तरीका मालूम नहीं हुआ।

हमें जो कुछ थोड़ा अच्छा लगता है, अनुकूल जान पड़ता है बस वहां राग-मोह कर लेते हैं। और कहीं मोह करेंगे तो कहीं न कहीं वैर भी होगा। वैर बनाना नहीं पड़ता है। मोह के पीछे वैर अपने आप चला आता है। जहां प्रतिकूल लगेगा वहां वैर बनेगा ही बनेगा। अनुकूलता में मोह किये, जहां अनुकूलता नहीं लगी, वहां वैर किये। मोह और वैर के द्वन्द्व में पूरा जीवन बीत गया। जो शांति खोज रहे थे वह तो मिली नहीं। इसलिए साहेब कहते हैं—सारा संबंध क्षणिक है। आज कल में सबकुछ से सदा के लिए संबंध छुटने वाला है। इसलिए कहीं मोह न करें। जो पदार्थ मिले हैं उनका निर्वाह के लिए, सेवा के लिए सदुपयोग करें। जो प्राणी मिले हैं उनके साथ सुन्दर व्यवहार कर लें, सेवा कर लें। कोई अपना नहीं है। हर जीव अकेला है। अकेले पैदा हुआ है, अकेले सबके सुख-दुख हैं, अकेले रह जाना है।

शारीरिक दृष्टि से देखें, बाहरी दृष्टि से देखें तो बहुतों के बीच में रहना पड़ता है। लोगों के बीच, संग-साथ रहकर काम-धंधा जीवन निर्वाह करना पड़ता है। लेकिन इस बीच में रहते हुए, भीड़ में रहते हुए भी हर आदमी अकेला है। कल्पना करें, परिवार में 15-20 आदमियों के बीच आप रहते हों। अचानक आपके पेट में या सिर में भयंकर दर्द होने लगा। लोग क्या कहेंगे,

अरे अभी तो अच्छे बोल रहे थे, क्या हो गया, डाक्टर बुलाओ, गाड़ी बुलाओ। परिवार वाले इतना करेंगे लेकिन क्या कोई आपके दर्द को थोड़ा-बहुत बांट लेंगे। क्या दर्द का बंटवारा होगा। तो सबके बीच में रहते हुए भी आप अकेले हो गये। उस अकेलेपन की याद कहां होती है।

हर जीव अकेला है। शरीर संबंध से ही संबंध जुड़ते चले जाते हैं लेकिन संबंध जुड़ते हुए भी हर जीव अकेला है। पति-पत्नी का जीवन पर्यन्त का साथ है लेकिन दोनों अलग-अलग हैं। पिता-पुत्र, भाई-भाई, गुरु-शिष्य साथ रहते हुए सब अलग-अलग हैं। अपनी-अपनी कर्म-कमाई सबको भोगना है। सबके सुख-दुख अलग-अलग होते हैं। इस बात को बताने के लिए कोई बहुत गूढ़ उदाहरण देने की जरूरत नहीं है। इसलिए साहेब कहते हैं—सबसे प्रेम करो, जो बने सेवा करो, मधुर व्यवहार करो। लेकिन कहीं मोह मत करो। कहीं अपने मन को जोड़ो मत। यह दुनिया मन जोड़ने लायक नहीं है। दुनिया से मन जोड़-जोड़ करके तो हम दुख उठाते आये हैं, बंधन बनाते आये हैं। हमारी सारी पीड़ा दुनिया से मन जोड़ने के कारण ही है।

अनादिकाल से आजतक हम यही करते आये हैं। अब कुछ दूसरा करना है। व्यावहारिक क्षेत्र में जो परिचित लोग होते हैं उनसे व्यवहार करने में, उनके साथ रहने में सुविधा होती है लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो कल्याण का मार्ग क्या है? परिचितों का साथ छोड़ देना। अपरिचितों से प्रेम करना, अपरिचितों के संग-साथ रखना। जितने परिचित हैं सबको छोड़ देना और जो अपरिचित हैं उनसे प्रगाढ़ संबंध जोड़ लेना, बस कल्याण हो जायेगा। कैसे? काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष, कलह-कल्पना, वैर-विरोध, ये सब परिचित हैं अनादि काल के और इन्हीं के बीच इनके साथ हम रहते आये हैं। आज भी रह रहे हैं और इनसे बड़ी प्रियता है। मन के जो विकार हैं वही हमारे परिचित हैं। जिनसे हमारी प्रियता है वही हमारे दुख का, बंधन का कारण है। दया, क्षमा, सत्य, धीर, विवेक, विचार, सहनशीलता, निष्कामता, निष्क्रोधता, निश्चिन्ता,

निर्भयता, ज्ञान-वैराग्य, ये अपरिचित हैं, इनसे संबंध जोड़ लें। इनके साथ रहने लग जायें तो सब दुख खत्म, सदा के लिए निश्चित, निर्भय, स्वतंत्र हो जायेंगे।

यह बात अचानक समझ में नहीं आती है? समझ में आती भी है तो पुराने संस्कार हमें दुनियादारी की तरफ खींचते हैं। उन पुराने संस्कारों को ही तो काटना है। साधना यही है पुराने संस्कारों को काटते जायें और निष्कामता, निष्क्रोधता, निर्लोभता, ज्ञान-भक्ति-वैराग्य, सहनशीलता, क्षमा ये सब बढ़ाते जायें। इनसे प्रेम कर लें तो काम बन जायेगा।

सद्गुरु कहते हैं कि दुनिया का सारा संबंध क्षणिक है। इसलिए कहीं मोह न करें। सेवा करें, प्रेम का व्यवहार रखें और अपने मन को उठाकर रखें। कैसे उठाकर रखना है? सद्गुरु की साखी है—“जाको जाना उत घरा, सो क्यों जोड़े मित। जैसे पर घर पाहुना, रहे उठाये चित ॥” जिसको उस घर जाना है, राम के घर, आत्मा के घर, स्वरूप लोक में जाना है वह कहीं अपने मन को क्यों जोड़े, कहीं मित्रता क्यों बनाये? जैसे कोई व्यक्ति किसी के घर मेहमान बनकर जाता है तो जिसके घर गया वहीं रुका नहीं रहता, वापस आ जाता है।

आपके घर में पहुना आते होंगे, समय से आप भी कहीं जाते होंगे, तो घर वाले बड़ी खातिरदारी करते हैं, बड़ा स्वागत-सम्मान करते हैं। जो अपना नहीं खाते हैं पहुना को खिलाते हैं। पहुना कुछ कामधाम नहीं करता है। घर वाले भी काम नहीं बताते हैं। पहुना खाली बैठा रहता है। घुमता-फिरता है, खाता है लेकिन वह पहुनाई में भूलता नहीं है। घर वालों से कहता है—अब छुट्टी दे दो, घर जाना है। घरवाले कहते हैं—अभी रुको। घरवाले रोकते हैं। पहुना कहता है—छुट्टी दो। वह अपने मन को रमाता नहीं है। वह यह नहीं सोचता कि बड़ी सुविधा मिल रही है, सुंदर-स्वादिष्ट भोजन मिल रहा है। अब तो यहीं रहना है। वह अपने चित्त को उठा करके रखता है।

इसी प्रकार यह दुनिया भी पहुनाई की जगह है। यहां चित्त को जोड़ें नहीं। उसी प्रकार अपने चित्त और

मन को उठा करके रखें जिस प्रकार पहुना अपने चित्त और मन को उठाकर रखता है, भूलता नहीं है। गुरु के चरणों में, गुरु के ज्ञान में, प्रेम लगायें। वहां से सब सुख मिलेगा।

सब सुख, पूर्ण सुख की प्राप्ति कैसे होगी? दुनिया के किसी भी भोग से पूर्ण सुख, स्थायी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। सारे भोग, सारा संबंध, सारे पदार्थ क्षणिक हैं तो उनसे स्थायी सुख कैसे मिलेगा। हम दुनिया के भोगों को भोग-भोग करके स्थायी सुख पाना चाहते हैं। यही भ्रम हमारे दुख का, बंधन का कारण है। स्थायी सुख तो उससे मिलेगा जो खुद स्थायी हो। सोचें, दुनिया में क्षणिक क्या है और स्थायी क्या है? क्षणिक तो सारा पदार्थ है। सारे भोग, विषयगत पदार्थ, सम्मान का सुख, स्वाद का दुख, देखने का सुख, सुनने का सुख, स्पर्श का सुख सब क्षणिक है। इन्द्रियों के जितने भी सुख-भोग हैं लौकिक से लेकर पारलौकिक तक स्थायी कोई नहीं है और हम उनसे स्थायी सुख चाहते हैं तो मिले कैसे?

हमारी दिशा ही गलत है, खोज ही गलत है, इसलिए भटक रहे हैं। स्थायी सुख तो स्थायी पदार्थ से मिलेगा। स्थायी कौन है? राम स्थायी है, आपका आपा, आपका अस्तित्व, लेकिन उसका ज्ञान नहीं है। इसीलिए भटक रहे हैं तब पूर्ण सुख कैसे मिलेगा! कबीर साहेब ने कहा है—“जब लग दिल पर दिल नहीं, तब लग सब सुख नाहिं।” जब तक दिल पर दिल नहीं होगा तब तक सब सुख नहीं मिलेगा। हमारा दिल तो हर समय बह रहा है। हम लोग अपने मन की जरा थाह लें। अपने मन को देखें तो कहां-कहां बहा जा रहा है। हर क्षण तो मन बह रहा है, भटक रहा है। ऐसी-ऐसी बातें मन सोचता रहता है कि अपने घनिष्ठ से घनिष्ठ से भी बता नहीं सकते। कितनी खुराफातें, कितने विकार भरे हुए हैं उसका ख्याल नहीं है।

हर क्षण तो बह रहा है मन, तब सुख कैसे मिले? यह मन का बहना रुकना चाहिए किंतु यह तब तक नहीं रुकेगा जब तक बाहर का आकर्षण बना रहेगा। बाहर

की चीजों को हम महत्त्व देते रहेंगे, उन्हें कीमती मानते रहेंगे। हर चीज की कीमत समझते हैं किन्तु उसकी कीमत नहीं समझते जो सबकी कीमत करने वाला है। हर चीज की कीमत समझने वाला आदमी अपनी कीमत को भूल गया है इसीलिए तो दीन, दुखी, दरिद्र बना भटक रहा है। जैसे किसी सम्राट की बुद्धि में भ्रम हो जाये और वह गली की गंदगी में, घुर में दानें बीनकर खाये तो यह कितना दुखद होगा।

यह जीव स्वरूपतः सम्राट है, महान है, कृतार्थ, पूर्णतृप्त है लेकिन उसे अपनी पूर्ण तृप्ति का, कृतार्थता का, महानता का बोध नहीं है। वह बाहर से तृप्ति चाहता है और बाहर से जितनी तृप्ति चाहेंगे उतनी अतृप्ति बढ़ेगी। इसलिए बाहर न दौड़ें। दिल पर दिल लगायें, अपने दिल को समेटें सब तरफ से। अपने को समेट कर रखें। मन को आत्मा में, ज्ञान में, भक्ति में लगायें। उसी में सब सुख कुछ मिलेगा। उसके अलावा सब सुख का, पूर्ण सुख का और कोई उपाय नहीं है। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—“संतो संतोष सुख है रहहु तो हृदय जुड़ाय।” “सदा रहे सुख संयम अपने।” सदा रहने वाला सुख क्या है? अपने संयम का, संतोष का सुख सब समय रहने वाला है।

यदि आत्मसंयम है, आत्मस्ववशता है तो जहां जायें वहां तृप्ति है, कहीं अभाव की खटक ही नहीं है, किसी बात की कमी नहीं है और आत्मसंयम नहीं है, आत्मस्ववशता नहीं है, बाहर विषयों में सुख खोज रहे हैं तो सब समय अतृप्ति है। क्योंकि अभी विषयों का संबंध हुआ है और अभी छूट जायेगा। पदार्थों में जो सुख का भ्रम होता है वह भी भूलवश है। दुनिया के किसी भोग में सुख नहीं है। छोटे से लेकर बड़े भोग तक की कल्पना कर लें स्थायी सुख किसी में नहीं है। स्थायी सुख क्या सच्चा सुख भी नहीं है। केवल आभास है। जैसे पानी सबके लिए शीतल होता है, आग सबके लिए गरम होती है क्या आप बता सकते हैं कि ऐसा कोई विषय, ऐसा कोई भोग, ऐसा कोई पदार्थ है जो सबके लिए सुखद हो।

जिसमें एक व्यक्ति सुख की कल्पना करता है दूसरा व्यक्ति उसमें दुख की कल्पना करता है। एक आदमी जिस वस्तु के बिना नहीं रह पाता, कहता है वह नहीं मिलेगा तो मैं मर जाऊंगा, दूसरा आदमी कहता है वह मिलेगा तो मैं मर जाऊंगा। किसी भोग में जो सुख का भ्रम होता है वह सुख उसमें नहीं है। जब उससे हमारा संपर्क होता है तब हमारे मन की जो चंचलता है थोड़ी देर के लिए शांत हो जाती है। जब मन की चंचलता शांत होती है तब उसमें हमें सुख का आभास होता है, भ्रम होता है। प्रिय से प्रिय माने गये भोग-पदार्थ मिल जाये और उस समय मन चंचल हो जाये तो सुख का अनुभव नहीं होगा।

जैसे एक आदमी कहता है मुझे मिठाई खाने में बहुत आनंद आता है। बंगाली रसगुल्ला मिल जाये तो क्या कहना मैं सब कुछ भूल जाता हूं। उसके सामने दो किलो बंगाली रसगुल्ला ला करके रख दिया गया और कहा गया कि जितना खा सकते हो खाओ, कोई रोक-टोक नहीं है। उसने देखा और कहा कि आज मुझे बड़ा सुख मिलेगा, बड़ा आनंद आयेगा। जैसे ही खाना शुरू किया किसी ने कहा—तेरा बेटा कुआं में गिर गया है। अब बताओ, उसको रसगुल्ला में आनंद आयेगा। रसगुल्ला तो वही है अगर उसमें आनंद है तो उस समय भी आनंद आना चाहिए, लेकिन अब नहीं आयेगा। क्योंकि अब चित्त चंचल हो गया, भयभीत हो गया।

सद्गुरु कहते हैं दुनिया का और हमारा संबंध बहुत अल्पकालिक है। कब किससे संबंध छूट जायेगा कहा नहीं जा सकता और संबंध छूटेगा तो सदा के लिए छूटेगा। इसलिए कहीं अपने मन को न रमायें। कहीं मोह न करें, अपने को कहीं बांधें नहीं। जो मिले सबके साथ प्रेम का, सेवा का, सहयोग का व्यवहार करें और सोचें कि मैं अकेला हूं और फिर अपने मन को दुनिया से, राग-रंग से हटाकर भक्ति में, वैराग्य में, साधना में लगायें। अपने आत्मा राम में लगायें वहीं से ही सब सुख की प्राप्ति होगी।

—धर्मेन्द्र दास

कुशल-मंगल?

लेखक—सौम्येन्द्र दास

कहो भैया, कुशल-मंगल। जी हां, ऐसा आप पूछते हैं या फोन पर आप कहते हैं, क्योंकि व्यवहार को आप समझते हैं। किसी व्यक्ति के मिलने पर अगर आप हाथ, हलो, नमस्ते या बंदगी नहीं करते हैं तो अव्यावहारिक हो जायेंगे। इसलिए शिष्टाचार यही कहता है कि जब हम किसी से मिलें तब व्यावहारिक औपचारिकताओं को निभाना चाहिए। इससे प्रेम भी बढ़ता है—

सुंदरता हो न हो सादगी होनी चाहिए,
खुशबू हो न हो महक होनी चाहिए।
रिश्ता हो न हो बंदगी होनी चाहिए,
मुलाकात हो न हो बात होनी चाहिए।

आज-कल तो मोबाइल साधन है शिष्टाचार निभाने का और प्रेम बढ़ाने का। सब कुशल-मंगल ही कहते हैं, लेकिन कुशल-मंगल किस बात का। जरा ध्यान दीजिये—अगर कोई बच्चा स्कूल में किसी से झगड़ा करके घर आता है। घर में मां-बाप ने पूछा—पढ़ाई ठीक रही? बच्चा कहता है—जी हां! लेकिन अगर झगड़ा करके आया है तो ठीक कहां है?

पति-पत्नी के बीच प्रेम नहीं है, परिवार में एकता नहीं है और उन लोगों से पूछा जाये, कहो कुशल-मंगल है। तो व्यवहार शिष्टाचार के लिए भले कह दें—जी हां! लेकिन जब प्रेम नहीं है, एकता नहीं है तो किस बात की कुशलता। कोई भक्त घर से लड़-झगड़कर, गलत कर्म कर संत के दर्शन करने गया। संत ने पूछा—भक्त जी, कुशल-मंगल है। वह कहता है जी—हां। तो किस बात की कुशलता! घर वालों से झगड़ा करना कोई कुशलता तो नहीं है।

कोई साधक, अपने गुरु या सद्गुरु के दर्शन के लिए चला, सफर में किसी बात को लेकर यात्रियों से बहस हो गयी, लड़ गया या किसी बात को लेकर मन को खराब कर लिया, व्यवस्था को लेकर आपस में मन मुटाव या प्रतिक्रिया करने लग गया लेकिन जब सद्गुरु के पास पहुंचे, फूल अर्पण किये तब सद्गुरु ने यात्रा का कुशल-मंगल पूछा, तो साधक ने कहा—जी हां,

कुशल मंगल है, आपकी कृपा है। लेकिन कुशल-मंगल कहां हुआ है।

कुशल-मंगल तो तब होता, जब सुनकर, सहकर, समभाव से आते। कुशल-मंगल तो तब होता, जब प्रेम से मिलजुलकर रहते, कुशल-मंगल तो तब होता जब हर परिस्थिति में मन को प्रसन्न रखने का काम करते।

क्या धन पाने से आदमी के जीवन में कुशल-मंगल आ जाता है या पद-अधिकार, मान-सम्मान, सुंदरता-बलिष्ठता के मिलने से आदमी का मानसिक जगत स्वस्थ हो जाता है? या आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि सब लोग अच्छा है, अच्छा है कहते हैं और खून के आंसू रो रहे हैं। डर, भय, चिंता लगी हुई है फिर कुशलता कहां?

जिसके पास धन है तो धन को सम्हालने की चिंता, जिसके पास नहीं है तो धन बटोरने की चिंता। पद है तो खोने का डर, नहीं है तो कैसे मिले, दुनिया की चीजों का भोग कैसे करें, और भोग में रोग का डर लगा हुआ है तो कुशलता कहां है?

विद्या को भय वाद को, तप को क्षय भय होय।
द्रव्य को नृप चोर भय, समुद्र सयाने लोय॥
सकल भोग को रोग भय, काया को भय काल।
सकल साधना इंद्रिन भय, ताते होत बेहाल॥

(श्रीपूरण साहेब, वैराग्य शतक)

भतृहरि जी महाराज अपने वैराग्य शतक में कहते हैं—

भोग रहे भरपूर आयु यह भुगत गई सब।
तप्यो नहीं तप मूढ़ अवस्था तपित भई सब॥
काल न कितहूँ जात वैस यह चली जात नित।
वृद्ध भई नहीं आश वृद्ध वय भई छांड हित॥
अजहूँ अचेत चित चेत कर देह गेह सो नेह तज।
दुख दोष हरण मंगल करण श्री हरिहर के चरण भज॥

अर्थात् दुनिया के भोग बने रहते हैं, लेकिन अपनी आयु क्षीण हो जाती है। तूने तप नहीं किया, किंतु सारी

अवस्थाएं तप गईं। काल नहीं गया, आयु ही चली गयी, उम्र ही बीत गई। हमारी आशा बूढ़ी नहीं हुई, किंतु शरीर बूढ़ा हो गया।

इसलिए ऐ असावधान मन! आज भी सावधान हो जा और देह-गेह का मोह छोड़ दे। जो दुख-दोष को हरण करने वाले हैं और मंगल करने वाले हैं, वही श्री हरिहर है। उनके चरणों की वंदना कर। हरिहर सद्गुरु ही हैं। जो हमारे सारे विकारों को हरे, बोध दे, हमारा उद्धार करे, वह सद्गुरु हरिहर है। जो ज्ञान-वैराग्य संपन्न हैं ऐसे सद्गुरु-संतों का आधार लेकर ही कल्याण होगा। बाहर हरिहर कहीं नहीं मिलेगा। दुनिया की चीजें मायावी हैं। ये एक दिन छूट जाती हैं। इन चीजों को लेकर हम आनंद और कुशल-मंगल मानते हैं तो हमारी भूल है। घर-परिवार, रिश्ते-नाते, जमीन-जायदाद और अंत में शरीर भी छूट जाता है। घर-परिवार, रिश्ते-नाते, जमीन-जायदाद का होना बुरा नहीं है, लेकिन इनको पाकर अपना जीवन सफल मान लेना, कल्याण मान लेना, कुशल-मंगल मानना, अपने को धोखा देना है, बल्कि यही दुख का कारण बन जाता है।

यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है।

चलो यहां से चले उम्र भर के लिए॥

दरख्त यानि वृक्ष। वृक्ष की छाया में भी धूप लगती है। वृक्ष का मतलब है अपने लोग। अपने लोगों से भी दुख मिलते हैं तो जी करता है सबको छोड़कर कहीं भाग जायें। लेकिन जहां जायेंगे वहां भी अनुकूलता नहीं मिली, सुख नहीं मिला, मन शांत नहीं हुआ तो कहां जायेंगे।

कई दफा अपनों द्वारा भयंकर मानसिक दुख मिलता है। हालांकि दुख का मूल कारण अपना बनाया हुआ मोह होता है। मोहवश बहुत कुछ पाने की आशा होती है और यही है दुख का कारण। तो अपनों द्वारा जब अवहेलना होती है तो कई बार लगता है कि संसार में कुछ भी सार नहीं है, फिर भी लगे रहते हैं... न लगे तो कहां जायें? बहुत बार लगता है कि क्या फायदा है दुनिया से दिल लगाकर फिर भी यह पागलपन कर रहे हैं। इस पागलपन को छोड़ें। जिसमें आनंद मान रहा था वही गले की फांसी बनती जा रही है।

भगवान बुद्ध ने कहा है—क्यों हंसते हो? कैसा आनंद जब नित्य काल की अग्नि जल रही है। तुम अंधकार से ढंके हो, दीपक क्यों नहीं खोजते?

को नु हासो किमानंदो निच्चं पज्जलिते सति।

अंधकारेण ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ॥

(धम्मपदं)

जीवन का प्रकाश अच्छे लोगों से, संत-गुरुजनों से मिलेगा जो अपने जीवन को साधना में लगाकर आत्मा रूपी परमात्मा में ठहर गये हैं। दुनिया तो भूल-भूलैया है। दुनिया का मोह दलदल की तरह है। आदमी दलदल में गिर जाता है तो निकलने के लिए जितना हाथ-पैर चलाता है उतना अंदर धंसता चला जाता है।

दुनिया की चीजों में डूबा आदमी थोड़ा धन पा गया, थोड़ी राजनीति में आ गया, थोड़ी विद्या पा ली, पुत्र-परिवार पा लिये तो समझता है हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि हो गयी। उसमें अहंता-ममता, मोह, वैर, राग-द्वेष बनाता चला जाता है। यही अहंता-ममता, मोह-वैर ही दलदल बन जाते हैं। अब इस दलदल से निकलना मुश्किल हो जाता है। किसी से कहो, अरे, अब तो छोड़ दो तो लोग कहते हैं साहेब, कैसे छोड़ दें। जीवन भर तो इसी में लगे रहे, अब कहां छुटेगा। अब तो इसी में कुशल-मंगल है। धन नशा है, राजनीति नशा है, घर-परिवार का मोह नशा है, एक बार चढ़ गया, फिर उतरना मुश्किल। फिर इसमें कैसी कुशलता, बल्कि इन्हीं सबके मोह में पड़कर आदमी दुख भोगता है।

कबीर साहेब कहते हैं, तुम्हारी मानी हुई दुनिया सब छूट जायेगी। फिर तुम किसको लेकर अपना कुशल-मंगल बताते हो। जिन प्राणी, पदार्थ, शरीर को लेकर कुशल-मंगल कहते हो। वही तुम्हारे गले की फांसी बन गये हैं। अपनी आत्मा की ओर लौटो जो अविनाशी है, अमर है, न टुटने वाली है, न छूटने वाली है। जीवन की कुशलता अपनी आत्मा को पा लेने में है—

कुशल कहत-कहत जग बिनसे, कुशल काल की फांसी हो।

कहहिं कबीर सारी दुनिया बिनसे, रहे राम अविनाशी हो॥

(बीजक, कहरा-8)

बीजक चिंतन

मन की विपरीतता को समझकर उसे छोड़ो

शब्द-101

देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझै बिरला कोई॥
धरती उलटि आकाश जाय, चिउंटी के मुख हस्ति समाय॥
बिना पवन सो पर्वत उड़े, जीव जन्तु सब वृक्षा चढ़े॥
सूखे सरोवर उठे हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा॥
बैठा पण्डित पढ़े पुरान, बिनु देखे का करत बखान॥
कहहि कबीर यह पद को जान, सोई सन्त सदा परमान॥

शब्दार्थ—जिय=जी, जीव, जान, मन, चित्त, तबीयत, जीवट, यहां का अर्थ है मन। यह पद=यह उलटवांसी शब्द। हिलोरा=तरंग। चकवा=एक पक्षी जो जाड़े के दिनों में जलाशयों के किनारे पाया जाता है और जिसके विषय में यह प्रसिद्धि है कि रात में जोड़े से उसका वियोग हो जाता है, चक्रवाक। बखान=वर्णन, बड़ाई, गुणकथन। यह पद=यह उलटवांसी शब्द। परमान=प्रमाण, सत्य।

रूपक—देख-सुनकर मन में बड़ा आश्चर्य होता है। इस उलटे दिखते हुए शब्द के भाव को कोई बिरला ही समझेगा। धरती उलटकर आकाश में उड़ी जा रही है, चींटी के मुख में हाथी डूबे जा रहे हैं, बिना पवन के पर्वत उड़ रहे हैं, सभी जीव-जन्तु पेड़ों पर चढ़कर आश्रय ढूंढ़ रहे हैं, सूखे सरोवर में तरंगें उठ रही हैं, बिना जल के चकवे-पक्षी क्रीड़ा-आनन्द कर रहे हैं, पण्डित व्यासगदियों पर बैठकर पुराण पढ़ते हैं और बिना देखी बातों की बड़ाई करते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि इस पद के अभिप्राय को जो समझकर हृदयंगम करेंगे, वे संत सदैव प्रमाणित एवं सत्य-पथ के पथिक होंगे।

भावार्थ—धर्म के नाम पर चलने वाली लम्बी-चौड़ी बातों को देख-सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है। मैं उन्हें व्यंजना एवं संकेत में कहता हूँ, इसलिए कोई बिरला

समझता है॥ 1॥ धरती उलटकर आकाश में जा रही है। अर्थात् देवता, ईश्वर, स्वर्गादि की धार्मिक कही जाने वाली अजीबोगरीब बातें सुनकर तथा उन्हें सत्य मानकर धरती पर के मनुष्यों के मन आकाश में उड़ने लगते हैं और उन्हें पाने के लिए छटपटाने लगते हैं। यह तो चींटी के मुख में हाथी समाने-जैसी बात हुई। अर्थात् मनुष्य के मन में आकाश-पाताल के कुलावे मिलने लगे॥ 2॥ इतना ही नहीं, बिना पवन के पर्वत उड़ने लगे। अर्थात् बिना विचार के बड़े-बड़े विद्वान-ज्ञानी कहलाने वाले लोग भी हवाई-महल बनाने लगे एवं कल्पनाओं में उड़ने लगे। पर्वतों को उड़ते देखकर जैसे भयभीत हो छोटे-छोटे जीव-जन्तु पेड़ों पर चढ़कर अपने रहने का आश्रय खोजने लगे, वैसे बड़े-बड़े विद्वान एवं ज्ञानियों को कल्पनाओं में उड़ते देखकर अशिक्षित सामान्य लोग भी अपनी रक्षा के लिए नाना देवी-देवताओं एवं भूत-प्रेतादि का आश्रय खोजने लगे॥ 3॥ इतना ही क्या, सूखे सरोवर में तरंगें उठ रही हैं और बिना जल के चकवे क्रीड़ा कर रहे हैं। अर्थात् अपनी आत्मा से भिन्न कहीं कोई देव, ईश्वर एवं स्वर्ग न होने पर भी उनके लिए लोगों के मन में तरंगें उठती हैं और बिना सार के वे उनके कल्पना-लोक में क्रीड़ा करते हैं॥ 4॥ इन सब के मूल में है कि पंडित लोग व्यासगदियों पर बैठकर पुराण बांचते तथा उनकी कथा कहते हैं और बिना देखी तथा बिना अनुभव की हुई बातों की बड़ाई करते हैं॥ 5॥ कबीर साहेब कहते हैं कि मेरे इस व्यंजनात्मक शब्द का भाव जो समझ लेगा वह अनर्गल बातों को छोड़कर सत्य-पथ का राही हो जायेगा। सत्य-पथ का राही ही प्रामाणिक संत है॥ 6॥

व्याख्या—धार्मिक कहे जाने वाले नाना मतों के पुराणों एवं धर्मशास्त्रों में स्वर्ग के तथा उसमें रहने वाले देवी-देवताओं, हूरों-गिल्मों तथा ईश्वर के ऐसे लुभावने वर्णन हैं जिन्हें सुनकर अशिक्षित ही नहीं शिक्षित और विद्वान लोग भी वहां पहुंचकर उनका आनन्द लेने के सपने देखने लगते हैं। हिन्दू, मुसलिम, ईसाई आदि हर मजहब के पंडित अपने-अपने पुराणों को पढ़ते तथा उनमें लिखी अजीबोगरीब बातों एवं मोहक और आश्चर्यचकित कर देने वाले विषयों का वर्णन करते हैं। वे मुट्टी भीज-

भीजकर उन बातों की बड़ाई करते हैं; परन्तु वह सब उनका “बिनु देखे का करत बखान” रहता है। इन नाना मतों के पण्डितों ने न तो आज तक किसी देव तथा फ़रिश्ते से भेंट की है, न ईश्वर से और न किसी स्वर्ग को देखा है; परन्तु इन सब की बड़ाई इस ढंग से करते हैं कि मानो ये उन सब को देखकर आये हैं। इन्हीं नाना मत-मजहबों के पंडितों के बहकावे में आकर लोगों के मन में ऐसी बातों में अंधविश्वास हो गया है जिनमें न कारण-कार्य-व्यवस्था है, न जिनसे विश्व के शाश्वत नियमों से कोई प्रयोजन है। सद्गुरु कहते हैं कि हमें इन लोगों के व्यवहार तथा बातें देख-सुनकर बड़ा आश्चर्य होता है।

इन लुभावनी बातों में पड़कर इस धरती के लोगों का मन आकाश के सातवें लोक एवं सातवें तपक पर घूम रहा है। ब्रह्मलोक, साकेतलोक, गोलोक, सत्लोक, बैकुण्ठलोक, शिवलोक, विष्णुलोक, बिहिश्त जहां हूरें, गिल्में, शराब, अप्सराएं, देवता, ईश्वर तथा सारे भोगों को पाने के झूठे आश्वासन दिये गये हैं वहां आदमी जाना चाहते हैं। धरती पर प्रेम तथा सदाचार का व्यवहार कर स्वर्ग बसाना चाहिए था, परन्तु आदमी ने राग-द्वेष, हिंसा, छलावा आदि का व्यवहार कर धरती को नरक बना दिया है। वह उलटी बात सोचता है, धरती छोड़कर आकाश की ओर उड़ता है। सद्गुरु कहते हैं कि आकाश में कुछ नहीं है। हमें धरती पर ही प्रेम तथा संयम से स्वर्ग का अनुभव करना होगा। हमें धरती के जीव देवी-देवता के रूप में दिखने चाहिए। इनसे अलग कहीं देवी-देवता नहीं हैं। सबके साथ अहिंसा, प्रेम और भलाई का व्यवहार ही स्वर्ग-सुख है। अपनी आत्मा ही सत्यलोक, स्वर्गलोक एवं ब्रह्मलोक है। परन्तु पंडित लोग मनुष्यों को बाहर भटका रहे हैं। चींटी के मुख में हाथी समाने लगे तो यह अचरज होगा। मनुष्यों के मन के कल्पनालोक का विशाल साम्राज्य चींटी के मुख में हाथी समाना है। शरीर, उसके सौंदर्य, बल, उपभोग्य कभी स्थायी एवं अनन्त नहीं हो सकते, अतएव कल्पित स्वर्गादि में उन्हीं को पाने की असम्भव कल्पना उसी प्रकार है जैसे चींटी के मुख में हाथी समाना।

बिना पर्वत के पवन उड़ रहे हैं। बड़े-बड़े विद्या तथा ज्ञान के अभिमानी लोग कल्पनाओं के लोक में उड़ रहे हैं। सभी मजहबों के मुल्ला, पंडित, पादरी कल्पनालोक के विलासी हैं। सभी मन के दिवास्वप्न में भटक रहे हैं। साहेब कहते हैं कि ये सब बिना विचार के उड़ रहे हैं। विद्याभिमानी, ज्ञानाभिमानी तथा मताभिमानी लोग ईश्वर, देव, स्वर्ग और स्वर्ग में अनन्तकाल तक मिलने वाले भोगों की कल्पना में उड़ते हैं, तो साधारण और अशिक्षित लोग कल्पित भूत-प्रेत तथा देवी-देवता की पूजा-वंदना कर अपनी सुरक्षा का आश्रय ढूंढते हैं। यही मानो जीव-जन्तु का वृक्षा चढ़ना है। पर्वत आकाश में उड़ते हैं तब जीव-जन्तु वृक्ष पर ही चढ़कर संतोष करते हैं। पढ़े-लिखे लोगों की कल्पना की उड़ान बहुत ऊंची है, तो अशिक्षितों की थोड़ी ऊंची है। परन्तु पर्वत और चींटी, बड़े कहलाने वाले तथा छोटे कहलाने वाले सब बिना विवेक मन की कल्पना में भटक रहे हैं।

“सूखे सरोवर उठे हिलोरा, बिनु जल चकवा करत किलोरा” यही तो कबीर साहेब की उलटवांसी है, जो लोगों की उलटी क्रिया देखकर बन जाती है। अपनी चेतना एवं आत्मारूपी सागर को छोड़कर लोक के विषय हों या कल्पित परलोक के, सब सूखे सरोवर हैं; परन्तु उनके लिए मनुष्यों के मन में तरंगें उठ रही हैं। लोक के विषय-भोग नीरस तथा अर्थहीन हैं और परलोक के भोग केवल काल्पनिक हैं। परन्तु उन्हीं की कल्पना में जीव क्रीड़ा कर रहा है। यह बिना जल के चकवा का क्रीड़ा करना है।

“कहहिं कबीर यह पद को जान” कबीर साहेब कहते हैं कि हमारे इस उलटवांसी पद के अभिप्राय को समझने की चेष्टा करो। मेरा सारा व्यंग्य उन पर है जो अपने चेतनस्वरूप को भूलकर, अपने आत्मदेव से विमुख होकर बाहर भटक रहे हैं। जो मन की कल्पनाओं को छोड़ देता है वह अपने आत्मारूपी देव को पा जाता है। मन की कल्पनाएं ही तो मनुष्य को लोक-परलोक के बाहरी दृश्यों से जोड़ती हैं! अतएव जो मन की सारी कल्पनाओं को छोड़ देता है वह स्वयं को पा

जाता है। यह स्वयं स्वरूप चेतन ही प्रमा है, चेतना है, बोध है, और इसको पा जाने वाला सदैव प्रमाणित संत है।

“सोई सन्त सदा परमान” ज्ञान के विषय में जिसकी निर्णय-दृष्टि है वही संत है और उसी की बात सदैव प्रमाणित मानी जायेगी। राजा सगर की पत्नी को एक ही बार में साठ हजार बच्चे पैदा हो गये¹, राजा प्रियव्रत ग्यारह अरब वर्ष राज्य किये², काकभुशुंडि एक ही आश्रम पर सत्ताईस कल्प अर्थात् एक खरब, सोलह अरब, चौसठ करोड़ वर्ष से रहते थे³, शिव जी ने सत्तासी हजार वर्ष तक ध्यान किया⁴ इन-जैसी हजारों बातें जो विश्वनियमों के विरुद्ध तथा कारण-कार्य की व्यवस्था से परे हैं, इनके होने में कोई प्रमाण नहीं है। ये सब मनुष्य के मन में भ्रम तथा अज्ञान पैदा करने वाली बातें हैं। संत ऐसी बातों को छोड़ देते हैं। वे उन्हें ही प्रामाणिक ज्ञान मानते हैं जो विश्वनियमों के अंतर्गत घटने वाले तथा विवेकयुक्त हों। संत वही है जो प्रामाणिक बातें माने। अंततः तो सभी को प्रमाणित करने वाली व्यक्ति की आत्मसत्ता ही है जो परम प्रमाणित है। संत मन के विस्तार को छोड़कर अपने चेतनस्वरूप में सदैव रमते हैं। यह आत्मस्वरूप ही प्रामाणिक सत्यलोक, ब्रह्मलोक एवं निजलोक है। इस स्थिति में पहुंचकर सारी विपरीतताओं का अंत है।

1. वाल्मीकीय रामायण 1/38/17-18। 2. भागवत 5/1/29।
3. इहां बसत मोहि सुन खगईसा।
बीते कल्प सात औ बीसा॥ (मानस 7/114/5)
4. बीते संबत सहस सतासी।
तजी समाधि संभु अविनासी॥ (मानस 1/60/1)

नमक की तरह कड़वा ज्ञान देने वाला ही सच्चा मित्र होता है। मीठी बात करने वाले तो चापलूस भी होते हैं।

सर्वविदित तथ्य है आज तक नमक में कीड़े नहीं पड़े, किन्तु मिठाई में अक्सर कीड़े पड़ जाते हैं।
—अज्ञात

लघुकथा

सीख

लेखक—श्री विजय चित्तौरी

बुढ़िया मर गयी। नाते-रिश्ते के लोग जुटे। घर में रोना-पीटना हुआ। शाम तक बुढ़िया का अन्तिम संस्कार कर दिया गया। अगले दिन सुबह बहू उस कोने की सफाई करने लगी जहां बुढ़िया रहती थी। उसने बुढ़िया के सभी बचे-खुचे कपड़े जला दिये। टुटही चारपाई को ले जाकर घर के पिछवाड़े फेंक दिया। लेकिन वहां उसे बुढ़िया का पिचका लोटा और टुटही थाली नहीं मिली। अभी बहू इन्हीं चीजों को खोज रही थी कि बेटा राजू वहां आ गया। बहू ने पूछा : ‘बेटा, बुढ़िया की थाली और लोटा कहां गया?’

बेटा : ‘मम्मी, मैंने उन्हें स्टोर में सुरक्षित रख दिया है।’

‘क्यों...?’ मां ने सवाल किया।

‘ताकि आप बूढ़ी हो जायें तो मुझे टूटी थाली और पिचका लोटा न खोजना पड़े।’ बेटे ने तपाक से जवाब दिया।

बहू सन्न...। काटो तो खून नहीं। बहू को अपना नारकीय बुढ़ापा आंखों के सामने दिखने लगा। उसके दिमाग में पश्चाताप की जो ज्वाला उठी उससे वह खड़ी न रह सकी। धम्म से जमीन पर बैठ गयी।

बड़ी-बड़ी डिग्रियां प्राप्त करके भी बहू को जो सीख नहीं मिली थी उसे मासूम राजू ने आज सहज ही दे दिया था।

सावधानी

- चोर और जुआड़ी के, शराबी और व्यभिचारी के, चरित्रहीन नारी के पास नहीं रहिए।
- यार दगाबाज से, साधु नशेबाज से, नारी बेलिहाज से बात नहीं कीजिए।
- ओलों की बरसात में, गुण्डों की जमात में, झगड़ों की बारात में लात मत दीजिए।
- बादल की छाया का, सपनों की माया का, कंचन सी काया का विश्वास नहीं कीजिए।

—अज्ञात

हौसला

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

ज्यों-ज्यों जचकी का समय करीब आता गया सुन्दर और उसकी पत्नी दिव्या की मनःस्थिति कुछ अजीब-सी होती चली गयी। मन में उठने वाली आशंका ज्वार-भाटे की तरह उन्हें भीतर तक आन्दोलित कर देती। कहीं उनकी आने वाली संतान भी उन्हीं की तरह दिव्यांग तो नहीं पैदा होगी? किन्तु वही मन उन्हें आश्वस्त भी करता, ऐसा जरूरी नहीं है। बच्चा पूरी तरह स्वस्थ भी हो सकता है। और वे कामना करते, हे भगवान, बेटा हो या बेटी, पर वह सम्पूर्ण अंगों के साथ स्वस्थ हो, बस इतनी-सी प्रार्थना है।

उनकी आशंका अकारण नहीं थी। जन्म से ही दिव्या की बांयों टांग, दायीं से थोड़ी छोटी थी, इसलिए वह थोड़ी लचक कर चलती थी। और यह दोष उम्र बढ़ने के साथ ही बना रहा। मगर सुन्दर के साथ ऐसा नहीं था। जब वह पैदा हुआ, पूरी तरह स्वस्थ था। उसके सारे अंग-प्रत्यंग आकर्षक और सुन्दर थे। जब नामकरण की बात आयी तब लोगों ने कहा, “बच्चा बहुत खूबसूरत है। इसका नाम सुन्दर रख दो।” बस उसका नाम सुन्दर हो गया।

पहली संतान होने के कारण सुन्दर मां-बाप की आंखों का तारा था। जब घर-आंगन में टुमकता, भागता-दौड़ता तो उसके मां-बाप खुशी से झूम उठते। जब तक वह जाग रहा होता, उसकी खनकती हंसी-किलकारी घर के कोने-कोने में गूंजती रहती। उसकी बाल-सुलभ चेष्टाओं से प्रफुल्लित मां-बाप रीझते-खीझते उसका बड़ा होना देखते रहे। धीरे-धीरे सुन्दर पांच साल का हो गया। अब वह अपने हमउम्र बच्चों के साथ घर से बाहर खेलने भाग जाता और उसकी मां उसे यहां-वहां गली-गली खोजती फिरती।

मगर नियति को उनकी यह खुशी मंजूर नहीं थी। एक दिन अचानक पोलियो का आक्रमण हुआ और सुन्दर के दोनों पैर लुंज हो गये। सर्दी के दिन थे, खेतों

में धान की कटाई शुरू हो गयी थी। सुन्दर को कुछ दिनों से हल्का बुखार था, फिर भी वह जिद्द करके खेलने चला गया। मां घर में थी और उसके पिता दौरा में गये हुए थे। पटवारी होने के कारण उन्हें अपने हलक़ा के गांवों की फसलों का अनावारी रिपोर्ट बनाना था। जब वे शाम को घर लौटे तो देखा सुन्दर बुखार और पैरों में दर्द से तड़फ रहा है। पास-पड़ोस के कुछ लोग भी आ गये थे। लेकिन किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था। उन्हें लगता था, जरूर बच्चे को किसी की नजर लगी है, बैगा-ओझा को बुलाना पड़ेगा। मगर सुन्दर के पिता तत्काल गांव के वैद्य के पास गये और उन्हें बुला लाये।

यह घटना बहुत पहले की है। तब आज की तरह न साधन थे, न सुविधायें थीं। सरकारी योजनाओं का न लोगों को पता होता, न स्वास्थ्य सुविधायें ही उनकी पहुंच में थीं। दूर-दराज के गांवों में बैगा-ओझा तथा वैद्य बीमारी-हारी में गांव वालों का सहारा थे। डॉक्टरों इलाज के लिए लोगों को लम्बी दूरी तय करके शहरों तक जाना पड़ता। सड़क के नाम पर कच्चे रास्ते से लोग पैदल ही यात्रा किया करते। ज्यादा आवश्यक हुआ तो बैलगाड़ी की व्यवस्था करनी पड़ती। तब सायकल भी इक्का-दुक्का सम्पन्न व्यक्ति या नौकरीपेशा व्यक्ति के पास ही होती थी।

वैद्य ने जांचने के बाद बुखार की दवा तथा पैरों में मालिस के लिए तेल भी दिया और कहा, “बुखार तीन-चार दिन में उतर जायेगा लेकिन पैरों को ठीक होने में कुछ समय लगेगा।” सुन्दर के पिता आश्वस्त हो गये। वैद्य के निर्देशानुसार दवाई चलती रही। बुखार तो ठीक हो गया, पैरों का दर्द भी चला गया परन्तु दोनों पैर एकदम शिथिल हो गये। बुखार ने सुन्दर को पूरी तरह तोड़कर रख दिया था। यहां तक कि वह अपने पैरों पर खड़े होने के काबिल भी नहीं रहा।

जब एक महीना बीत जाने के बाद भी कोई सुधार नहीं हुआ तो सुन्दर के मां-बाप चिंतित हो उठे। उन्होंने बैलगाड़ी की व्यवस्था की और उसे शहर के बड़े डॉक्टर के पास ले गये। डॉक्टर ने देखते ही कह दिया, “पोलियो की वजह से इसके पैर लाचार हो गये हैं? इसको पोलियो की दवाई पिलानी थी। लगता है आपने चूक कर दी। बायां पैर ज्यादा कमजोर है, दायां कुछ ठीक है। दवाई और मालिस के लिए लिख रहा हूं, हो सकता है इससे कुछ सुधार हो। बाद में आवश्यक हुआ तो आपरेशन करेंगे। अभी तो इसके लिए बैसाखी खरीद दो, धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जायेगा।”

सुन्दर के पिता यह सोचकर सिहर उठे कि अब उसका बेटा पहले की तरह बिल्कुल ठीक नहीं हो सकता। न वह भाग-दौड़ सकेगा, न अपने संगी-साथियों के साथ खेल पायेगा। अभी तो उसके सामने सारी जिन्दगी पड़ी है। दूसरों के भरोसे वह कैसे अपनी जिंदगी जियेगा? और वे कब तक उसका सहारा बनेंगे? ऐसे कितने ही प्रश्न थे जो उनको भीतर तक झिंझोड़ते रहे। बिल्कुल साफ दिखाई दे रहा था कि अब सुन्दर का भविष्य पूरी तरह अंधकारमय हो गया है।

सुन्दर के मां-बाप बहुत पछताते थे कि अनजाने में ही उनसे बहुत बड़ी चूक हो गयी। समय पर उसे पोलियो की दवाई पिला दी होती तो आज ऐसी नौबत नहीं आती। इसी तरह दिन बीतते चले गये। लोग जहां कहते सुन्दर के पिता उसे वहीं ले जाते, पर सुन्दर के भाग्य में शायद यही लिखा था। लाश कोशिशों के बावजूद उसके पैर पूरी तरह ठीक नहीं हुए।

वक्त के साथ सुन्दर और उसके मां-बाप परिस्थिति से समझौता करके जिंदगी की राह पर चल पड़े। सुन्दर चलना चाहता था, भागना-दौड़ना और अपने साथियों के साथ पढ़ना-लिखना चाहता था, पर अपनी स्थिति को देख मन मसोसकर रह जाता। पढ़ाई के प्रति उसकी रुचि देख सुन्दर के पिता ने घर पर ही एक घंटा पढ़ाने के लिए एक शिक्षक से बात की तो वे राजी हो गये। मां-बाप के साथ उस शिक्षक ने भी सुन्दर का हौसला बढ़ाया कि तुम भी अपने साथियों के साथ बैसाखी के

सहारे चलते हुए स्कूल जा सकते हो। वहां बच्चों के साथ पढ़ोगे तो बहुत मजा आयेगा।

और सुन्दर तैयार हो गया था स्कूल जाने के लिए। स्कूल उसके गांव से छै किलोमीटर दूर था। बैसाखी के सहारे छै किलोमीटर चलना आसान नहीं था। पहले दिन उसे कई जगह बैठ कर सुस्ताना पड़ा पर उसने हिम्मत नहीं हारी। पीठ पर बस्ता लादे वह एक घण्टा पहले घर से निकल पड़ता। और धीरे-धीरे रेंगता स्कूल पहुंच जाता। घर लौटने के लिए भी वह यही करता। कई बार बच्चे उसका मजाक उड़ाते। एक बार तो स्कूल के एक साथी ने बीच रास्ते में उसकी बैसाखी छीन कर दूर फेंक दिया था। वह हड़बड़ा कर गिरा और बहुत देर तक वहीं बैठा रोता रहा। फिर न जाने उस लड़के को क्या हुआ कि वह लौट कर आया और उसकी बैसाखी उठा लाया और सुन्दर को गले लगा लिया। फिर उसका बस्ता अपनी पीठ पर लाद कर घर तक पहुंचाया। इस घटना के बाद दोनों पक्के मित्र हो गये। वह लड़का अब रोज अपना और सुन्दर का बस्ता लाद कर उसके साथ ही स्कूल जाता और घर लौटता।

रात में जब सोने जाता तो अक्सर सोचा करता काश, उसके भी पैर ठीक होते तो वह भी अन्य बच्चों के साथ धमा-चौकड़ी करता, खेलते-कूदते स्कूल जाता और हंसते-खिलखिलाते घर लौटता। कभी-कभी अपनी लाचारी पर उसकी आंखों में आंसू आ जाते। उसकी हालत देख लोग कहा करते थे, ‘सब भाग्य का खेल है।’ तब उसके मन में एक हूक-सी उठती थी, कौन लिखता है यह भाग्य? क्या गुनाह था उसका जो उसे ऐसी सजा मिली? इसके आगे वह कुछ भी सोचने-समझने में असमर्थ था। रातों को नींद में मन की उमंगें मूर्त होकर साकार हो उठती और वह देखता कि उसके दोनों पैर बिल्कुल ठीक हो गये हैं। वह भी अपने साथियों के साथ उछलते-कूदते भाग रहा है, किन्तु जब नींद टूटती तो वह आहें भर कर रह जाता।

धीरे-धीरे उसके मन से हीन भावना निकलती चली गयी और वह स्वाभाविक जीवन जीने लगा। पढ़ाई में

बहुत अच्छा नहीं था फिर भी वह कभी फेल नहीं हुआ। उसके मां-बाप खुश थे। वे लगातार उसका हौसला बढ़ाते रहे कि इसी तरह पढ़ते रहे तो जरूर तुम्हें कहीं न कहीं नौकरी मिल जायेगी और तुम स्वयं अपनी जिंदगी अच्छी तरह से जी सकोगे। सौभाग्य से विद्यार्थी जीवन में ही दाहिना पैर काफी ठीक हो गया और उसमें पहले से अधिक शक्ति लौट आयी। बायें पैर में घुटने से ऊपर और कमर के नीचे आपरेशन किया गया तो वह भी थोड़ा सक्रिय हो गया। इस तरह एक-एक कदम बढ़ाते वह दसवीं कक्षा में पहुंच गया। मगर दुर्भाग्यवश वह दसवीं में फेल हो गया।

यह सुन्दर के लिए अत्यंत दुखद और निराशाजनक घटना थी। जब सुन्दर के पिता को इसकी जानकारी मिली तो वे गम्भीर हो गये फिर थोड़ी देर में बोले “अच्छा ही हुआ, अब न तुम्हें पढ़ना पड़ेगा, न हम लोग तुम्हारी पढ़ाई की चिंता में परेशान होंगे। मस्त घर में खा-पीकर पड़े रहो। जब तुम खुद अपना दुश्मन बन गये तो हम लोग क्या कर सकते हैं?” फिर पैर पटकते हुए भीतर चले गये थे। उस दिन उनके घर जैसे मातम पसर गया था। खाना तो बना पर खाया किसी ने नहीं। अंत में सुन्दर अपने पिता के सामने जाकर रोने लगा, “बाबू जी, मुझे एक मौका और दे दीजिये। मैं अपने बलबूते पर जीना चाहता हूँ। आप ही मुंह मोड़ लेंगे तो मैं किसके सहारे जीऊंगा?”

सुन्दर के पिता को अपनी भूल का एहसास हुआ। उन्होंने उसे गले लगाकर कहा “बेटा, जब तक सामर्थ्य है तुम्हारी सहायता करेंगे। पढ़ लोगे तो तुम्हारे लिए ही अच्छा है।” सुन्दर ने उसी क्षण निश्चय कर लिया था कि अब वह कभी पिता को निराश नहीं करेगा। और हुआ भी वही, सुन्दर ने अगली बार अच्छे अंकों से दसवीं की परीक्षा पास किया और निरंतर सफलता की सीढ़ियां चढ़ता चला गया। फिर एक दिन वह इन्जीनियर बन कर घर लौटा। उस दिन उसके मां-बाप बहुत खुश हुए थे। अब वे निश्चित हो गये थे कि उनका बेटा अपनी जिंदगी अपने बलबूते जी सकता है।

सचमुच सुन्दर ने अपनी काबिलियत और हौसला से जिंदगी का बहुत बड़ा जंग जीत लिया था। स्वयं कमाने लगा तो चेहरा आत्मविश्वास की चमक से दमकने लगा। उसकी इस उपलब्धि से गदगद उसके मां-बाप ने एक दिन सुन्दर से कहा “बेटा, अब तुम अपनी घर-गृहस्थी भी बसा लो तो हमारी आखिरी इच्छा भी पूरी हो जायेगी।”

मां-बाप की चाहत स्वाभाविक थी। सुन्दर स्वयं भी शादी को लेकर उलझा हुआ था। मन में कई तरह के विचार उठते और विलीन हो जाते। क्या कोई लड़की उससे शादी के लिए तैयार होगी। क्या वह उसकी जिम्मेदारी निभा पायेगा? फिर वह कल्पनालोक में खो जाता, जहां एक सर्वांग सुन्दरी सजधज कर विवाह मण्डप में उसकी प्रतीक्षा कर रही होती लेकिन सच्चाई उसे दूसरे ही पल वर्तमान में खींचकर खड़ी कर देती। और वह एक आह भरकर रह जाता। मन में कई दिनों तक संघर्ष चलता रहा, क्या उसे अकेले ही जिंदगी का सफर तय करना चाहिए? या किसी को साथ लेकर चले? अन्ततः उसने विवाह करने का ही फैसला किया। सुन्दर ने सहमति दे दी तो खोजबीन शुरू हो गयी। जानते थे पूरी तरह स्वस्थ सुन्दर लड़की उनकी बहू बनने को तैयार नहीं होगी और उन्हें समझौता करना पड़ेगा। इसी बीच एक दिन उनके घर दूर के गांव से दो व्यक्तियों का आगमन हुआ। उनमें एक व्यक्ति दृष्टि बाधित था, जिसका नाम मोहन था। दूसरा व्यक्ति मोहन का साथी था। सुन्दर के पिता उस समय घर पर ही थे। व्यावहारिक औपचारिकता के बाद मोहन ने अपने आगमन का उद्देश्य बताया, “पटवारी साहब, हमने सुना है कि आप अपने लड़के का विवाह करना चाहते हैं और लड़की की तलाश में हैं। बस इसी सिलसिले में आपसे मिलने आये हैं।”

“यह तो बहुत अच्छी बात है।” सुन्दर के पिता खुश हो गये थे।

“पटवारी साहब, मैं दिव्यांग होने की पीड़ा को जानता हूँ इसीलिए उनके लिए कुछ करना चाहता हूँ। मेरे पास आस-पास के अनेक दिव्यांग युवक-युवतियों

की जानकारी है। मैं उनके सम्पर्क में हूँ। उनकी योग्यतानुसार उनकी सहायता करके खुश हो जाता हूँ। घर में थोड़ी खेती-बाड़ी है, जिसे पत्नी संभालती है। उसकी बायीं आंख ठीक नहीं है, दायीं आंख से सारा व्यवहार निबटाती है। इस तरह हमारी जिन्दगी की गाड़ी चल रही है।”

“अन्यथा न लें तो एक बात पूछना चाहता हूँ।” सुन्दर के पिता ने झिझकते हुए कहा।

“एक बात नहीं, जो मन में हो निःसंकोच पूछिये। यकीन मानिये कतई बुरा नहीं मानूंगा।” मोहन ने कहा।

“क्या आप दोनों पति-पत्नी के बीच लड़ाई-झगड़ा नहीं होता? और आपको इस बात का दुख नहीं होता कि आप अपनी आंखों से इस दुनिया की सुन्दरता को नहीं देख सकते?” सुन्दर के पिता कुछ गम्भीर हो गये थे।

“होता है पटवारी साहब, हम लोग भी लड़ते-झगड़ते हैं। हमारे बीच भी मनमुटाव होता है लेकिन थोड़ी देर बाद फिर मान-मनौव्वल करते हैं। ऐसा नहीं करेंगे तो जियेंगे कैसे। हम लोग भी रोते हैं और हंसते भी हैं। रही संसार की सुन्दरता देखने की बात, तो आंख वालों की करनी और दुर्गाति सुनता हूँ तो बहुत संतोष होता है कि मैं दृष्टिबाधित हूँ। आंख वाले रूप विषय में जो पागल हैं वह दुख हमें स्वाभाविक नहीं है। अधिकतम अपराध रूप विषय के कारण ही होते हैं। हमारा शरीर निर्वाह अच्छे-से हो रहा है। हमें आंख के अभाव की खटक बिल्कुल नहीं है। हम सोचते भी नहीं कि हमें मिल जाये।”

सुन्दर के पिता मोहन के इस जवाब से चकित रह गये। उन्होंने कहा, “जीवन के प्रति आपका दृष्टिकोण एकदम निराला है।” इसके बाद बातचीत सुन्दर की शादी पर केन्द्रित हो गयी थी। मोहन बोला, “हमारे पड़ोस के गांव में दिव्या नाम की एक लड़की है। बायें पैर से थोड़ी लाचार है लेकिन पढ़ी-लिखी और गृह कार्य में निपुण है। मुझे लगता है सुन्दर और उसकी जोड़ी अच्छी रहेगी। चाहें तो आप लोग एक दूसरे से सम्पर्क कर सकते हैं।”

थोड़ी देर ठहर कर मोहन ने फिर कहना शुरू किया “दुर्भाग्य से लड़की के पिता की मृत्यु एक दुर्घटना में हो

गयी थी। आज परिवार में उसकी मां और एक भाई है जो उम्र में उससे छोटा है। शारीरिक दोष और पिता की मृत्यु के लिए लोग दिव्या को ही दोषी मानते हैं। इसीलिए उसका रिश्ता नहीं हो पा रहा है। आप लोग पढ़े-लिखे और समझदार हैं यही सोचकर आया था।”

सुन्दर के पिता ने कहा, “आपने बहुत अच्छा किया। हम उनसे मिलने जरूर जायेंगे। यदि लड़का लड़की राजी हो गये तो हमें शादी करने में कोई एतराज नहीं है।”

इसके बाद मोहन और उसके साथी चले गये। कुछ दिन बाद सुन्दर को लेकर उसके पिता दिव्या के घर पहुंचे तो दोनों पक्ष शादी के लिए सहमत हो गये और शीघ्र ही शादी भी हो गयी। फिर तो उनकी जिन्दगी की गाड़ी सरपट दौड़ने लगी। सुन्दर आफिस से लौटकर आता और फिर दोनों तिपहिया स्कूटी में बाजार करने निकल पड़ते, सुन्दर स्कूटी में बैठा रहता और दिव्या सौदा लेकर लौट आती। लोग उनकी जिंदादिली, उनके जीने की उमंग देख खुशी से मुस्करा उठते। कहीं से भी लोगों को यह आभास नहीं होता था कि उन्हें दिव्यांग होने का जरा भी मलाल है। हर सम्भव वे अपना काम स्वयं निबटाते थे। शादी-ब्याह हो या अन्य किसी कार्यक्रम में सहभागिता की बात हो, वे कभी पीछे नहीं रहे। हमेशा हंसते-मुस्कराते जरूर पहुंचते और सबसे घुल-मिल कर बातें करते। लोग उनकी व्यवहार कुशलता के कायल थे। इसके अतिरिक्त छुट्टी के दिनों में सैर सपाटा के लिए भी निकल पड़ते। इस तरह एक साल कैसे बीता कुछ पता नहीं चला।

फिर कुछ दिन बाद जब उनके घर नये मेहमान के आगमन की स्थिति आयी तो वे भी हर गृहस्थ की तरह खुशियों के झूले में झूलने लगे। लेकिन उनके मन में उत्साह के साथ आशंका भी थी कि कहीं उनकी संतान उन्हीं की तरह दिव्यांग पैदा न हो। आखिर प्रतीक्षा की घड़ी खत्म हो गयी और उनके घर एक साथ दो बेटियों ने जन्म लिया, वह भी सर्वांग पूर्णता के साथ। अब तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा, उनकी मुंहमांगी मुराद जो पूरी हो गयी थी। □

सुंदर सूक्तियां

संकलन—साध्वी सुबुद्धि

1. विद्वानों का दास बनना उत्तम है, पर मूर्खों का स्वामी बनना हानिकारक है।
2. किसी व्यक्ति में जिस चीज को तुम पसंद नहीं करते, ध्यान रहे कि वह बात तुम्हारे अंदर भी नहीं आनी चाहिए।
3. जब दो झगड़ते हैं, दोनों गलती पर होते हैं।
4. करो नहीं ऐसा व्यवहार, जो हो न स्वयं को स्वीकार।
5. सावधान! पल भर का क्रोध, सारा भविष्य बिगाड़ सकता है।
6. सबसे बड़ा धनी दुनिया में वह है जिसको कुछ भी नहीं चाहिए।
7. सुखी रहने का सर्वोत्तम उपाय है, सदा प्रसन्नचित्त रहना।
8. दिशा बदलने से दशा बदल जाती है, दृष्टि बदलो सृष्टि बदल जायेगी।
9. जो धन के धनी होते हुए भी गुणों से कंगाल हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिये।
10. सब संत व महापुरुषों के चरण पकड़ते हैं, परन्तु आचरण कोई नहीं पकड़ता।
11. दुनिया हमें वैसी नहीं दिखती जैसी वह है, बल्कि वैसी दिखती है जैसे हम हैं।
12. हम उपदेश सुनते हैं मन भर, देते हैं टन भर किंतु ग्रहण करते हैं कण भर।
13. अपने प्रिय को उसके गुण-दोषों के साथ स्वीकार करो, उसने भी तुम्हें स्वीकार किया है।
14. यदि आप अपने वर्तमान से संतुष्ट नहीं हैं तो सारे संसार को पाकर भी आप सदा दुखी ही रहेंगे।
15. सारे सुखों की जड़ है स्वीकार कर लेना, राजी रहना। सारे दुखों की जड़ है अस्वीकार कर देना, अतृप्त रहना।
16. सोचिए कि स्वयं को बदलना कितना कठिन है। फिर दूसरे को बदलना कैसे सरल हो सकता है।
17. अच्छी पुस्तकें मन के लिए साबुन का कार्य करती हैं।
18. तुम्हारा धंधा तुमको निगल जाये ऐसी परिस्थिति से बचना।
19. जो चीज तुम्हारे पास नहीं है वह जिनके पास है, क्या वे प्रसन्न हैं?
20. जीवन भर विद्यार्थी बने रहें, ताकि ज्ञान प्राप्ति के द्वार खुले रहें।
21. दूसरे की विशेषताएं देखते जाओगे तो एक दिन विशेष आत्मा बन जाओगे।
22. कर्मचारियों के साथ इस तरह पेश आयें कि वे आप पर सदा गौरव कर सकें।
23. सामग्री के क्षेत्र में संतुष्ट बन जाना, पर सदगुणों के क्षेत्र में हमेशा असंतुष्ट ही बने रहना।
24. भूल जाना ही सुख है और याद रखना ही दुख है। अतीत को याद नहीं रखें एवं वर्तमान को सुधारें।
25. आवश्यकता तो भिखारी की भी पूरी हो जाती है जबकि इच्छाएं करोड़पति की भी अधूरी ही रह जाती हैं।
26. हे गुरुदेव ! सारी दुनिया को सुधारना, परंतु इसकी शुरुआत तो मुझसे ही करना।
27. जिस घर में वस्तु का मूल्य व्यक्ति से अधिक है, वह घर नहीं कारखाना है।
28. मेरी गलतियां मुझसे कहो दूसरों से नहीं, क्योंकि सुधारना मुझे है उनको नहीं।
29. गलत दिशा में बढ़ रही भीड़ का हिस्सा बनने से बेहतर है सही दिशा में अकेले चलें।
30. गलत व्यक्तियों का चयन हमारे जीवन को प्रभावित करे या न करे लेकिन एक सही व्यक्ति की उपेक्षा हमें जीवनभर पछताने पर मजबूर कर सकती है।

मन और व्यवहार

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 14-09-2004 को कबीर संस्थान, इलाहाबाद में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।— प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

देवियो तथा देवताओ! मन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। मन ही सुख देता है और मन ही दुख देता है। इसी मन पर ही सारा दारोमदार रहता है। हमारा मन जब उलझा रहता है तब पीड़ा देता है और जब सुलझा रहता है तब सुख देता है। मन जब इतना महत्त्वपूर्ण है तब यह सहज ही जिज्ञासा होती है कि वह बनता कैसे है। इसी पर आज कुछ विचार किया जायेगा।

मन व्यवहार से बनता है। वह आकाश से बनकर नहीं टपक पड़ता है। कुछ लोग किसी के सामने उसके या किसी अन्य के लिए कुछ अनसुहाती बात कह देते हैं फिर बाद में उसपर ग्लानि करते हैं और कहते हैं कि यह बात तो मेरे मन में नहीं थी, मुख से निकल गई लेकिन जब वह बात मन में नहीं थी तब मुख से निकल कैसे गई। मन में जो नहीं रहेगा वह मुख से निकल कैसे जायेगा।

यदि कोई कहे कि मेरी पेटि में यह चीज नहीं थी लेकिन निकल आयी तो कैसे निकल आयी। यही असम्भव दोषयुक्त कथन है। पेटि में सामान था तभी पेटि खोलने पर वह निकला। हां, यह कह सकते हैं कि मैंने गलती की, असावधानी की या हड़बड़ी में बिना सोचे ही मैंने कह दी। मुझसे भूल हो गयी। “मेरे मन में यह बात नहीं थी” यह कहना झूठ है। “मेरे मन में थी” यही सत्य है। अज्ञान से थी, बेसमझी से थी लेकिन थी तभी वह मुख से निकली। इसको स्वीकारना कोई बुरा नहीं है। अज्ञान किसमें नहीं है। हमारे में, आप में, सबमें अज्ञान है और ज्ञान तथा अज्ञान का सिगनल हमारा व्यवहार ही है।

जब हम अन्दर से अज्ञानग्रसित होते हैं तो कुछ ऐसा बोलते हैं और करते हैं जो गलत होता है लेकिन जब हमारे अन्दर में ज्ञान का प्रकाश होता है तब उस

ढंग से बोलते और करते हैं जिससे सुख होता है।

हमारे व्यवहार से ही मन बनता है। इसलिए सद्गुरु कबीर ने व्यवहार मात्र को पूजा कहा है। उन्होंने कहा है “जो कुछ करूं सो पूजा” जो मैं करता हूं वह पूजा है। आप इसको छोटी बात मत समझ लीजिएगा। यह बहुत बड़ी बात है। अगर आप नाली भी साफ करते हैं तो उसे मन लगाकर साफ कीजिए। नाली साफ करना तो सामान्य पूजा से भी बड़ी पूजा है क्योंकि स्वच्छता और सफाई ही ईश्वरत्व, श्रेष्ठत्व और ब्रह्मत्व है। बाहर और भीतर की स्वच्छता ईश्वरत्व है। अतएव नाली साफ करना छोटा काम नहीं है किंतु बहुत बड़ा काम है। तो काम चाहे कुछ भी हो, पूजा है। हां, ऐसा काम न हो जिससे दूसरे को पीड़ा हो, ऐसा काम न हो जिससे अपने मन और इन्द्रियों में लम्पटता हो। गलत काम के दो ही लक्षण हैं—अपना मन-इन्द्रिय लम्पट हों और दूसरे को पीड़ा हो। ऐसा जो काम है वह गलत काम है।

जिसमें अपने मन-इन्द्रिय का संयमन हो और दूसरे के लिए तकलीफ न हो किंतु सुख-सुविधा हो वह काम पुण्य का काम है, अच्छा काम है। हमें अपने पूरे कर्म को पूजा समझकर करना चाहिए। विश्वास, श्रद्धा, व्यवहार, बरताव अच्छा बनाकर चलना चाहिए। जैसे परिवार की बात है वहां बड़े लोगों के प्रति श्रद्धा, छोटों के प्रति करुणा और स्नेह, बराबर में प्रेम, यह भाव व्यवहार की शुद्धता की बुनियाद है और ये तीनों एक ही चीज है। जैसे एक ही धातु है सोना लेकिन उससे कंगन, कंठा, कुण्डल, केयूर और करधनी आदि सब बना लिया जाता है वैसे एक मन के कोमल भाव से ही श्रद्धा, स्नेह और प्रेम ये तीनों बनते हैं।

जब हम अपने मन का कोमल भाव बड़ों के प्रति समर्पित करते हैं तब उसका नाम है श्रद्धा, छोटों के प्रति

जब समर्पित करते हैं तो उसका नाम है स्नेह और जब बराबर वालों के प्रति समर्पित करते हैं तो उसका नाम होता है प्रेम। बात एक ही है। श्रद्धा, प्रेम और स्नेह एक ही बात है। चित्त की कोमलता व्यवहार की अच्छी बुनियाद है।

बड़ों के प्रति अनादर, छोटों से घृणा और परस्पर में ईर्ष्या-द्वेष यह खराब व्यवहार की बुनियाद है और इससे पूरा जीवन नरक बन जाता है। इससे मन खराब हो जाता है और खराब मन के द्वारा जितना व्यवहार किया जाता है उतनी खराबी बढ़ती जाती है। मन की खराबी से हम गलत काम करते हैं और गलत काम से मन की खराबी और बढ़ती है क्योंकि करनी के संस्कार जैसे ही इकट्ठे होते हैं, जैसे किसी गीली चीज में खमीर उठता है। जिस प्रकार कुछ गीली वस्तुओं में खमीर उठता है उसी प्रकार हमारे मन में भी खमीर उठता है। जो हम कर्म करते हैं उसके संस्कारों का खमीर उठता है। किसी दिन कुछ बोलने और बरतने में भूल हो जाये तो मन चैन से नहीं रहेगा। भले ही हम अहंकार करें और अपने मन को समझायें कि “इससे बड़ी-बड़ी गलतियां लोग करते हैं। हम ही अकेले थोड़े ऐसा किये हैं” लेकिन अंतरात्मा क्षमा नहीं करती। आप भले ही अपने को झुठलाते रहो, आपको उसका फल मिल जायेगा जिससे आप कष्ट में पड़ेंगे।

बड़े लोग यदि गलती करते हैं तो उसका फल वे भोगेंगे और छोटे लोग जो गलती करते हैं उसका फल वे भोगेंगे। आप जो करते हैं उसको आप भोगेंगे। बड़े लोग गलती करते हैं तो इससे आपका दुख दूर थोड़े ही हो जायेगा। बड़े लोग जो गलती करते हैं वह भी गलत है और छोटे लोग जो गलती करते हैं वह भी गलत है। आप अपने को देखिये। कहावत कहते हैं कि—“अपनी कमाई आप की, न माई की न बाप की।” हम जो कुछ भी करते हैं उसका फल हमें ही भोगना होता है।

बड़ों के प्रति हमें श्रद्धालु होना चाहिए। माता-पिता और गुरु ये तीन बड़े हैं। माता-पिता व्यवहार में बड़े हैं

और गुरु परमार्थ में बड़े हैं। माता-पिता का अगर गलत स्वभाव भी हो तो भी उनमें श्रद्धा रखनी चाहिए क्योंकि माता-पिता बदले नहीं जा सकते हैं, गुरु बदले जा सकते हैं। गुरु गलत हैं तो उनको छोड़ा भी जा सकता है। यद्यपि अपने गुरु का भी उद्धार करने वाले लोग हुए हैं। इतिहाससिद्ध पुरुष गोरखनाथ जी महाराज ऐसे ही योगी पुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को भी संभाला था। मत्स्येन्द्रनाथ उनके गुरु थे जिनको हम सरल भाषा में मछन्दर नाथ कहते हैं। वे आसाम क्षेत्र की ओर गये थे। इसी संदर्भ में आप लोग यह भी समझ लीजिए कि आज जिसको ‘लंका’ कहा जाता है वह लंका नहीं है। हमारे यहां कामरूप जो आसाम का क्षेत्र है वही लंका रहा होगा। “सिंघल हू में बोरी हो”—ऐसा साहेब ने कहा है। उस समय लंका की प्रसिद्धि थी तो साहेब ने भी सिंघल कहा। वह आसाम का क्षेत्र ही होना चाहिए।

मत्स्येन्द्रनाथ वहां के राजा की रानियों में विमोहित होकर उन्हीं में उलझ गये। अमरोली और बज्रोली की क्रिया की चर्चा योग में लायी गयी है जो एक महा भ्रष्टाचार है। उसमें कहा जाता है कि अमरोली और बज्रोली की क्रिया को योगी ऐसा साध लेते हैं कि अपनी पेशाबेन्द्रिय से पानी खींच लेते हैं, तेल खींच लेते हैं और मधु खींच लेते हैं और वे अगर स्त्री से संयोग करें तो अपने वीर्य को स्तम्भित रख सकते हैं ताकि स्खलित न हो, ऐसा कहा जाता है।

इसमें सच्चाई कितनी है पता नहीं लेकिन इतना पक्का है कि यह महा भ्रष्टाचार है। हठयोग के ग्रंथ ‘हठयोग प्रदीपिका’ में यह कहा गया है कि यह बड़ी ऊंची साधना है लेकिन यह ऊंची साधना क्या है। संयम से रहना ही ऊंची साधना है। अमरोली और बज्रोली तो महा असंयम है और महाभ्रष्टता है।

कहते हैं कि योगीराज मत्स्येन्द्रनाथ इस क्रिया को साधे थे और वे रानियों में लिप्त हो गये। जब गोरखनाथ जी महाराज को पता लगा तो वे गये लेकिन वहां इतना कड़ा पहरा था कि कोई भी वहां जा नहीं

सकता था। तो जिस भवन में उनके गुरु रहते थे उसकी चहारदीवारी से ही उन्होंने—“जाग मछन्दर गोरख आया” ऐसा गीत बनाया और गाया। उस समय के उनके दो पद मैंने बीजक व्याख्या में, जहां इसका प्रसंग है, वहां रखा है और वे दोनों बड़े मार्मिक हैं। एक पद है—“गुरुजी ऐसा करम न कीजै, ताथैं अमी महारस छीजै।” और दूसरा पद है—“रूपे-रूपे कुरूपे गुरदेव, बाघनीं भोलै-भालै, जिन जननीं संसार दिषाया, ताकौं ले सूते षोले।” ये दोनों टेक हैं। फिर आगे बड़ी मार्मिक बातें कही गई हैं।

गोरखनाथ जी ने अपने गुरुजी को समझाते हुए कहा—“गुरुजी, ऐसा करम न कीजै” ऐ गुरुजी! आप योग के नाम पर यह क्या कर्म कर रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने बहुत झकझोरा जिससे योगी मत्स्येन्द्र नाथ की नींद खुल गयी। वे सुने तो वहां से निकल आये और बच गये और फिर से संभल गये। गोरखनाथ जी की विशेषता थी कि वे अपने गुरु से घृणा नहीं किये और उन्होंने गुरु का उद्धार किया। योगी मत्स्येन्द्रनाथ की भी बड़ी विशेषता यह थी कि अपने शिष्य की बात को सुनकर उन्होंने अवहेलना नहीं की। उनकी बात को माने और निकल आये और अपने को फिर से साधना में प्रतिष्ठित कर लिये। ‘गोरखबानी’ में ऐसी कथा आती है। कहने का तात्पर्य है कि ऐसे-ऐसे भी उच्चकोटि के साधक हुए हैं जिन्होंने अपने गुरु को भी सावधान किया है।

गोरखनाथ जी महाराज हठयोग में एक उच्चकोटि के संतपुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने गुरु का भी उद्धार किया। उनसे उन्होंने घृणा नहीं किया लेकिन यह बानक हर जगह नहीं मिलता है क्योंकि हर शिष्य में इतनी योग्यता भी नहीं होती है। अगर गुरु गड़बड़ है तो भी उससे जो निर्देश मिला है उसके लिए वह आदरणीय है। फिर भी गुरु बदला जा सकता है क्योंकि वर्तमान में अच्छे गुरु की शरण के बिना अपना कल्याण नहीं होगा। केवल किताब पढ़ और जान लेने मात्र से यह काम नहीं होगा।

अच्छे गुरु की शरण लिये बिना कल्याण नहीं होगा। कल्याण के लिए एक समर्थ आधार चाहिए। यह आधार गृहस्थों को भी आवश्यक है और जो बिलकुल विरक्त हो गये हैं, उनके लिए तो यह परम आवश्यक ही है। गृहस्थ तो अपने घर में है और अपने बहुत प्रापंचिक कार्य में है लेकिन उसके साथ-साथ अच्छे गुरु के आधार में वह यदि है तो बहुत अच्छा है लेकिन जो विरक्त है वह तो उसी के लिए घर छोड़कर निकला है। वह यदि अच्छी संगति में नहीं रहेगा तो उस दशा में वह कैसे ठहरेगा।

गलत गुरु को छोड़कर अच्छे गुरु की शरण में जाया जाता है लेकिन माता-पिता को तो छोड़ना ही असम्भव है। माता-पिता से तो हम जन्मे हैं इसलिए माता-पिता बदले नहीं जा सकते हैं। माता-पिता में अगर त्रुटि भी है तो भी उनमें श्रद्धा रखनी चाहिए। माता-पिता ने हमें जन्म दिया है, पाला-पोषा है, सेवा की है तो उनमें त्रुटि देखकर उनसे घृणा नहीं होनी चाहिए। गुरु अनेक प्रकार के होते हैं। जिस गुरु से जितना मिला हो उसका उतना उपकार मानना चाहिए लेकिन अपने काम की पूर्णता के लिए पूर्ण सद्गुरु की शरण चाहिए।

गुरु और सद्गुरु में फर्क है। एक-एक विषय का ज्ञान देनेवाला गुरु कहलाता है और जिसकी शरण में जाकर सारी भ्रांतियां कट जायें वह सद्गुरु कहलाता है। “सद्गुरु मिले ते जाहिं जिमि संशय भ्रम समुदाय” यह गोस्वामी जी ने कहा है। जिसको सद्गुरु मिल जाते हैं उसके मन के सारे संशय और भ्रम मिट जाते हैं। कबीर साहेब ने कहा है—

जाको सद्गुरु ना मिला, व्याकुल दहुं दिशि धाय।

आंखि न सूझे बावरा, घर जरे घूर बुताय॥

जिसको सद्गुरु नहीं मिले हैं वह तो बेचारा संताप में व्याकुल होकर दशों दिशाओं में भागता फिरता है। उसको सद्गुरु की शरण लिये बिना कहीं भी शांति नहीं मिलती। इसलिए हमारे जीवन में सद्गुरु की परम आवश्यकता है।

यहां का संदर्भ यह है कि माता-पिता में यदि त्रुटि भी हो तो भी उनको छोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन गुरु में यदि त्रुटि है और साधना में वह विघ्न कर रहा है तो उसको छोड़कर दूसरे साफ-सुथरे गुरु के पास जाया जा सकता है लेकिन अपने माता-पिता को छोड़कर दूसरे माता-पिता के साथ तो नहीं जाया जा सकता है। जो अपने माता-पिता हैं वे ही अपने माता-पिता हैं। इसलिए माता-पिता का आदर होना और उनके प्रति श्रद्धा होना चाहिए। यह गृहस्थी में बहुत जरूरी है। आज माता-पिता के प्रति लोगों की श्रद्धा घट रही है। फिर भी ऐसा नहीं है कि सब शून्य हो गया है और मातृत्व और पितृत्व की भावना नहीं रह गयी है। माता-पिता के प्रति आदर की भावना आज भी है लेकिन बहुत घट गयी है। उनके प्रति इतनी लापरवाही हो गयी है कि अच्छे-अच्छे सम्पन्न घरों में मां-बाप बिलबिला रहे हैं। भोपाल में गांधी भवन से संबद्ध एक वृद्धाश्रम है। पहली बार जब मैं वहां गया तो देखा कि उस वृद्धाश्रम में मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, हिन्दू और सिक्ख सभी वर्ग के वृद्ध लोग रखे जाते हैं। पहली बार वहां मेरा प्रवचन हुआ और प्रवचन के पश्चात प्रसाद वितरित हुआ तो जो वृद्ध बिस्तर से नहीं उठ सकते थे उनके पास जाकर प्रसाद दिया गया। एक ईसाई महिला थी जो बहुत वृद्ध थी उसके पास जाकर जब प्रसाद उसे दिया गया तो वह मारे खुशी के मगन हो गयी। प्रवचन में वहां मैंने कहा कि भाई, वृद्धाश्रम के अधिकारियों तथा सेवकों की तो विशेषता है और इनकी तो प्रशंसा करनी चाहिए लेकिन इतने वृद्ध और इतनी वृद्धा जो यहां इकट्ठा हैं, यह गृहस्थी का कोई शुभ लक्षण नहीं है। वृद्धाश्रम के लोग दूसरे के मां-बाप को प्रेम से पाल रहे हैं और लोग अपने मां-बाप को न पाल पायें यह कितनी दुखद बात है।

कितने पढ़े-लिखे लोग हैं जो अफसर हैं। उनके माता-पिता वृद्ध हो जाते हैं तो उनको वे वहां ले आते हैं और आश्रम को कुछ पैसा दे देते हैं और कहते हैं कि इनको आप लोग आश्रम में रखिये। वे स्वयं अपने माता-पिता की सेवा नहीं करना चाहते। यह कितनी गिरावट है। लेकिन उन बच्चों को यह समझ लेना चाहिए कि उनके रहते आज उनके मां-बाप की जो दशा

हो रही है, वही दशा कल उनकी भी होगी क्योंकि यह तो एक क्रम है कि जो सलूक आप अपने मां-बाप के साथ करेंगे वही सलूक आपके साथ आपके बच्चे करेंगे।

अगर कोई गृहस्थ भक्त गुरु, सद्गुरु और संतों के प्रति श्रद्धा न रखेगा तो उसकी क्या दशा होगी। एक तो वह गृहस्थी में डूबा ही है और दूसरे संत, गुरु के प्रति श्रद्धा न रखेगा तो कालिख में वह और डूब जायेगा लेकिन जो विरक्त बनकर आया है वह तो तलवार की धार पर ही है। वह संत-गुरु के प्रति श्रद्धा यदि हटाया तो फिर सीधे गड्ढे में ही जायेगा। गृहस्थ का तो चलो अपना एक स्तर है। वह जहां है वहां पड़ा है और अच्छा-बुरा जितना उससे बन सकेगा, वह करेगा लेकिन कोई साधु होकर साधु-गुरु के प्रति श्रद्धाहीन हुआ उसे तो रसातल में ही जाना है। इसलिए गुरु और सद्गुरु के प्रति श्रद्धा की महती आवश्यकता है। अपने से बड़ों के प्रति श्रद्धा, छोटों के प्रति स्नेह और बराबर वालों में प्रेम होना चाहिए। छोटा-बड़ा मानना और होना एक व्यवहार है। व्यवहार में छोटा-बड़ा मान लिया जाता है लेकिन मूलतः कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

मौलिक रूप में हम सभी बराबर हैं। व्यावहारिक दृष्टि से हम सब मनुष्य हैं और आध्यात्मिक दृष्टि से हम सब चेतन हैं। चेतन में कोई विशेषता नहीं होती है। वह तो निर्विशेष होता है और मानवता में भी विशेषता नहीं होती है। वह भी निर्विशेष होती है। निर्विशेष जो होता है उसमें प्रमाद नहीं होता है। विशेष में ही सारा प्रमाद होता है। हम मनुष्य और आप मनुष्य बस हम सब मनुष्य हैं यह निर्विशेष है। सब बराबर हैं लेकिन जब एक चपरासी है और एक कमिश्नर है तब विशेष हो जाता है और इसी में गड़बड़ी शुरू हो जाती है।

एक मनुष्य गुरु हो गया और एक मनुष्य चेला हो गया। इसी में विशेष हो जाता है और इसी में गड़बड़ी शुरू हो जाती है लेकिन इस विशेष को माने बिना चल भी नहीं सकता क्योंकि चपरासी चपरासी है और कमिश्नर कमिश्नर। इसी प्रकार गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है, पिता-पुत्र का सम्बन्ध है। व्यवहार तो यही रहेगा, मर्यादा तो यही रहेगी लेकिन सब अन्दर से यह समझें कि पुत्र का मतलब छोटा नहीं है और शिष्य का मतलब

नीच नहीं है। पुत्र भी वही है, शिष्य भी वही है जो माता-पिता और गुरु हैं। इसलिए विवेकवान कभी अपने को बड़ा मानते ही नहीं हैं। अपने को बड़ा मानना ही घोर अज्ञान है। व्यवहार में छोटा-बड़ा माना जाता है और उसकी मर्यादा है यह ठीक है। बड़ों के प्रति श्रद्धा, छोटों के प्रति स्नेह, बराबर वालों के प्रति प्रेम और इन तीनों का अर्थ है कोमलता। सबसे कोमल होकर मिलना चाहिए और यह बुनियादी बात अगर मन में है तो सब व्यवहार सुन्दर होगा। अपने से बड़े के प्रति यदि हम श्रद्धा रखेंगे तो उसकी उपेक्षा हम कैसे करेंगे, उसके प्रति अनदेखी कैसे करेंगे। परस्पर में हम यदि प्रेम रखेंगे तो स्वार्थ में पड़कर छीना-झपटी कैसे करेंगे। केवल अपना ही स्वार्थ कैसे साधेंगे। अलग से अपना स्वार्थ साधने की बात नहीं है। सबका स्वार्थ अपने आप सधता है।

यह परम आवश्यक है कि हम अपने को सामान्य रखें, विशेष न मानें। व्यवहार में सामान्य और विशेष होता है लेकिन अन्दर से माने रहें कि हम सामान्य हैं। सामान्य में हमारी दृष्टि रहेगी तो अहंकार नहीं रहेगा। मैं शुद्ध चेतन हूँ तो अब शुद्ध चेतन में किसी की क्या बड़ाई है। कोई मेरी बड़ाई करे और कहे कि “अभिलाष तो बहुत अच्छा है” तो यह ‘अभिलाष’ की बड़ाई है जो बिलकुल झूठ है। अभिलाष कुछ है ही नहीं। स्याही से एक कागज में लिख दिया जाता है ‘अभिलाष’, जो एक काल्पनिक चिह्न है और उसको अभिलाष कह दिया जाता है। इस चेहरे को कुछ दिनों से ‘अभिलाष’ कह दिया गया जो मिट्टी है और एक दिन यह मिट जायेगा और ऐसा मिटेगा कि बिलकुल दिखाई नहीं देगा। नाम और रूप जो एकदम झूठ है उसी को हम अपना मान लिये हैं किन्तु “मैं शुद्ध चेतन हूँ” जो एकदम सत्य है और निर्विशेष है उसका ख्याल ही हमें नहीं है इसीलिए सारा संताप है।

‘अभिलाष’ के आधार पर सभी नामों को आप समझ लें कि सभी नाम काल्पनिक हैं और मिथ्या हैं। जो आपका अस्तित्व है, आपकी सत्ता है वह शुद्ध चैतन्य और निर्विशेष है। निर्विशेष में कोई प्रपंच नहीं है। इसलिए महिमा की बात ज्यादा नहीं करनी चाहिए। ज्यादा बड़ाई से ईर्ष्या भी शुरू होती है। हम जो ज्यादा

बड़ाई करते हैं उससे दूसरे पक्ष के लोग ईर्ष्या भी करने लगते हैं। इसलिए बहुत बड़ाई की जरूरत नहीं है किंतु काम की जरूरत है। हमें काम करना चाहिए कि जहां बड़ाई दिखती है वहां से प्रेरणा लेनी चाहिए और वैसे ही हम भी काम करें, बड़ाई बहुत न करें।

महिमा करते-करते बहुत विकृतियां आती हैं। अधिक श्रद्धा हिंसा पैदा करती है। जब हम अधिक श्रद्धा करते हैं तब दूसरे को समझ नहीं पाते हैं। कबीर साहेब में यदि अधिक श्रद्धा करें तो अन्य महापुरुषों को हम समझ नहीं पायेंगे। इसी प्रकार किसी एक महापुरुष में हम अधिक श्रद्धा करेंगे तो अन्य महापुरुषों को हम नहीं समझ पायेंगे। यह नमूना हर जगह है। एक में जहां अधिक श्रद्धा किये कि दूसरे को नहीं समझ पायेंगे।

श्रद्धा हमारी तरल होनी चाहिए जिससे दूसरों को भी समझ सकें। हमसे हिंसा न हो लेकिन धार्मिक क्षेत्र में तो हिंसा बहुत की जाती है। धर्म के क्षेत्र में तो बाहर में तथा मन में घोर हिंसा की जाती है। अपने गुरु को, अपने महापुरुष को अपने पूज्य को आकाश में बैठा दिया जाता है और दूसरे के महापुरुष को जमीन पर लाकर रख दिया जाता है और उनसे घृणा की जाती है। कुछ धार्मिक लोग तो यहां तक मानते हैं कि हमारे मत के लोग स्वर्ग में जायेंगे और दूसरे मत के लोग नरक में जायेंगे अथवा भवसागर में भटकते रहेंगे। यह कितनी झूठी बात है। स्वर्ग और नरक किसी के मत की चीज नहीं है, स्वर्ग और नरक तो मन की चीज है। बन्ध और मोक्ष मन की चीज है। मन मैला है तो नरक है और मन निर्मल है तो स्वर्ग है। मन में मोह है तो बन्धन है और मन निर्मोह है तो मोक्ष है। यह एक व्यक्तिगत विषय हुआ। कोई सम्प्रदाय इसमें क्या करेगा?

सारे सम्प्रदाय एक सरणी हैं, रास्ता हैं। सभी ने कल्याण का कुछ रास्ता दिखाया है। उसमें रास्ता उलझन वाला भी है और सुलझाव वाला भी। काफी साफ वाला भी है और काफी उलझाव वाला भी। उसको आप अपने विवेक से देखिये, परखिये और परख-देखकर जो अच्छा है उसे लीजिए लेकिन जिसको हम कम अच्छा समझते हैं उसमें भी अच्छाइयां हैं। जिसमें हम बहुत सही समझते हैं उसमें भी कहीं कोई त्रुटि है तो वह भी संशोधनीय है। धर्म के क्षेत्र में जो

दकियानूसी का विचार है उसे देखकर बहुत क्लेश होता है।

श्री निष्पक्ष साहेब, जिन्हें तपसी साहेब कहा जाता था और जिनका आश्रम उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिला के बैरी तथा चकबसवा में है, उन्होंने सन् 1966 में इलाहाबाद के कुम्भ मेला में अपना शिविर लगाया था और मुझे निमंत्रित किया था तो वहां मैं गया। वह मेरा प्रथम कुम्भमेला था। उस मेले में जहां देखा, वहीं भाषण में खींच-तान कि मेरे यहां ही स्वर्ग, मेरे यहां ही मोक्ष। हिन्दू तो ज्यादा मोक्ष ही कहते हैं स्वर्ग आदि को वे अधिक प्रतिष्ठित नहीं करते हैं लेकिन जो गैर हिन्दू और विदेशी मत हैं उनमें स्वर्ग ही सब कुछ है। उनका तो कोई पंडाल कुम्भ मेला में था ही नहीं। अपने यहां के तमाम सम्प्रदायों के पंडाल थे और सारे कुम्भ मेला में यही बात सुनने को मिले कि हमारे ही यहां मोक्ष है, दूसरे के यहां नहीं है। मेरा स्वभाव तो समता वाला है। मैं कबीर साहेब के विचारों के अनुसार अपने पंडाल में कहता था तो समता वाली बात कहता था।

एक विद्वान थे जो हमारे मत के नहीं थे। वे हमारे साथ ही मेले में आते-जाते थे और सबको सुनते थे। एक दिन उन्होंने कहा कि चारों तरफ जहां-जहां पंडालों में मैं जाता हूं तो मालूम होता है कि होश-हवाश में ही नहीं हैं लेकिन जब यहां आपके पंडाल में आता हूं तो शांति मिलती है। यहीं पर पता लगता है कि सभी महापुरुषों का मूल्य है।

कबीर साहेब हमारे सद्गुरु हैं लेकिन जो अन्य महापुरुष हैं वे भी हमारे सिरमौर हैं। उनमें कोई गृहस्थ हैं, कोई विरक्त हैं लेकिन सब आदरणीय हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, हजरत मुहम्मद ये सब गृहस्थ हैं। संत ईसा, तथागत बुद्ध, महावीर स्वामी, शंकराचार्य स्वामी इत्यादि विरक्त हैं लेकिन ये सब हमारे सिर-माथे पर हैं। इन्होंने समाज को बहुत कुछ दिया है यदि इनके प्रति हम उदासीन हों तो इतने में हिंसा है और घृणा करें तो महा हिंसा है। धर्म के क्षेत्र में इस बात पर लोग सोचें और प्रयोग करें तब धर्म का असली स्वरूप सामने आयेगा। एक तरफ धर्म कहते हैं और एक तरफ हिंसा रूपी महा अधर्म करते हैं।

संत ईसा का जो मूल्य है उसका अगर हम उदार और निष्पक्ष होकर मूल्यांकन नहीं करते हैं तो हम हिंसा करते हैं। हजरत मुहम्मद की कुछ बातों को लेकर उलझ जाना कितनी गलत बात होगी। उनकी जो दृढ़ता थी, उन्होंने एक ऐसे समूह को अध्यात्म की तरफ मोड़ा जो महा उफान-शैतान में था वह उनका बहुत बड़ा काम था। उनका मूल्यांकन सही होना चाहिए और ऐसे ही सभी महापुरुषों का मूल्यांकन सही होना चाहिए। धर्म के क्षेत्र में यह बात यदि आ जाये तो बहुत बढ़िया हो जाये और तब धर्म का सही स्वरूप प्रतिष्ठित हो जाये।

श्रद्धा की बड़ी जरूरत है। श्रद्धा, स्नेह, करुणा और प्रेम जो बुनियादी चीजें हैं इनपर हमें ध्यान देने की जरूरत है। मानवमात्र को समान समझने की बात, निर्विशेष मनुष्यता की बात, निर्विशेष आत्मतत्त्व की बात पर हमारी दृष्टि हो तो महिमा का चक्कर छोड़कर हम सबका सही मूल्यांकन कर सकेंगे और ईर्ष्या-द्वेष का अवसर इसमें घटता जायेगा। ज्यादा महिमा, ज्यादा बड़ाई, ज्यादा प्रतिष्ठा दूसरी तरफ ईर्ष्या शुरू करवा देती है। ज्यादा महिमा करोगे तो दूसरी तरफ ईर्ष्या आरम्भ होगी। बहुत महिमा की आवश्यकता नहीं है। काम की आवश्यकता है, काम करें। हमारे यहां तो काम कम किया जाता है और महिमा ज्यादा किया जाता है। यही गड़बड़ी है।

ऐसे भी लोग हुए हैं जो अपने गुरु के मर जाने के बाद उनकी बड़ी बड़ाई करते हैं लेकिन गुरु जब तक जीवित रहे तब तक उनसे वे नफरत करते रहे। आजकल सभी घरों में ऐसी ही दशा है। लोग अपने मां-बाप से बात नहीं करते हैं लेकिन उनके मर जाने के बाद वे बड़े भोज और बड़े दान का जब आयोजन करते हैं तब मालूम होता है कि वे अपने माता-पिता के बड़े भक्त रहे हैं लेकिन माता-पिता के जीवित रहने पर वे उनके पास बैठते तक नहीं थे। इसलिए जरूरी है कि अपने माता-पिता एवं बड़े-बूढ़ों का आदर करें तथा अपने गुरुओं का सम्मान करें। यही आज का बुनियादी काम है।

अब मैं अपने मूल विषय पर आऊं। मैं कह रहा था कि व्यवहार से हमारा मन बनता है। व्यवहार अगर

कटु है तो मन कटु होगा। यदि आपाधापी की भावना है, अंधा स्वार्थ है तो हमारा मन खराब हो जायेगा। अभी मैंने कहा कि जो सही स्वार्थ है वह स्वार्थ सबका सधता है। गलत खा लेना, गलत बोल देना, गलत कर लेना, गलत स्वार्थ है। ज्यादा खा लेना, ज्यादा हड़प कर लेना गलत है। सहज रहे तो सबको खाना-पीना मिलेगा। सबका निर्वाह हो जायेगा।

यह प्रकृति सूनी नहीं हो गयी है। यह प्रकृति तो भोजन का अक्षय भंडार है। भोजन का अर्थ केवल चावल-दाल ही नहीं किंतु जीवन व्यवहार में आनेवाली सारी चीजें हैं। प्रकृति सबका अक्षय भंडार है। यह न आज खत्म हो गयी है और न कभी खत्म होगी। ऐसा विश्वास कीजिए और हाथ-पैर मारिये। जहां आप हैं वहां परिश्रम करिये, आलसी मत बने रहिये। भोजन की कमी नहीं होगी और जीवन गुजर की वस्तुओं की भी कमी नहीं होगी। हमारा व्यवहार सरल और पवित्र होगा तो हमारा मन भी सरल और पवित्र होगा। सरल मन साधक का मुख्य लक्षण है। कुटिल होकर तो साधना हो ही नहीं सकती। यदि सरलता नहीं है किंतु कपट है तो यह बहुत गलत बात है। इसलिए सबको सरल होना चाहिए।

उपनिषद् की बात है। एक बार छः जिज्ञासु ऋषि पिप्पलाद के पास शंका समाधान के लिए आये और उनकी प्रतीक्षा में उनके आश्रम में ही रुके रह गये। जब ऋषि आये तो उन्होंने उन जिज्ञासुओं से कहा कि तुम लोग क्यों आश्रम में डेरा डाले पड़े हो।

जिज्ञासुओं ने कहा कि हम लोगों के प्रश्न हैं। उनका समाधान आपसे कराने आये हैं। पिप्पलाद ने कहा कि अच्छा, तुम लोग आश्रम में एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य पूर्वक निवास करो। यानी एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए आश्रम की सेवा करो। जब एक वर्ष बीत जायेगा तो आप लोग प्रश्न कीजिएगा अगर मैं उन प्रश्नों का उत्तर जानता होऊंगा तो उत्तर दूंगा और नहीं जानता होऊंगा तो किसी अन्य ऋषि के पास आप लोगों को लेकर चलूंगा और समाधान कराऊंगा।

वे छहों ब्रह्मचर्यपूर्वक वास करते हैं और आश्रम की सेवा करते हैं। आज तो यह दशा है कि लोग आते हैं और खड़े-खड़े कहते हैं कि महाराज, हमारे प्रश्नों का उत्तर दीजिए क्योंकि अधिक रुकने की फुरसत नहीं है। दरवाजे पर गाड़ी खड़ी है, झट घर लौटना है।

ऋषि पिप्पलाद के आश्रम में उन जिज्ञासुओं का एक साल जब बीत गया तब उन्होंने उन जिज्ञासुओं को बुलाया और उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। उनको उपदेश करते हुए उन्होंने कहा है—“तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति” अर्थात् निर्मल ब्रह्मलोक उनके लिए है जिनके मन में कुटिलता नहीं है, झुठाई एवं छल-कपट नहीं है। जिनका चित्त सरल है और मति विमल है उनके लिए ही निर्मल ब्रह्मलोक है। “विमल मति उनके सरल सुभाव” यह श्री विशाल साहेब का वचन है और यह संत का लक्षण है। जो संत होता है उसकी बुद्धि निर्मल और उसका स्वभाव सरल होता है।

नीति के एक ग्रंथ में मैंने पढ़ा था कि सच्चे आदमी को समझना बहुत सरल है। वह झट से समझ में आ जाता है लेकिन कुटिल को समझना बड़ा मुश्किल है क्योंकि वह बाहर कुछ और भीतर कुछ और होता है। वह बाहर अपना चेहरा बनाये रहता है। चित्त की सरलता केवल संत का ही नहीं किंतु मानवमात्र का लक्षण है। संत और मानव में कोई फरक नहीं है। इसीलिए साहेब ने कहा कि “मानुष होय के ना मुआ”। जो मनुष्य हुआ वह अमरत्व को पाया। साहेब तो संत भी नहीं कहना चाहते हैं। उनके लिए तो मनुष्य ही बहुत काफी है। वे कहते हैं कि मनुष्य हो जाओ बस, सब हो गया। और मनुष्य वह है जो मननशील और विवेकी हो।

सच्चा मनुष्य होने के लिए सरल चित्त होना चाहिए, झूठ और छल-कपट नहीं। सरल व्यवहार से ही सरल मन बनेगा। इसलिए विविध मतों में जो पूजा की जाती है वह अच्छा है, बुरा नहीं है लेकिन जीवन की जो पूरी प्रक्रिया है उसी को असली पूजा समझना चाहिए। सुबह से शाम तक, जबतक हम जागते रहते हैं

तबतक यावत क्रिया को हमें पूजा समझना चाहिए और बड़ी सावधानी से हर काम करना चाहिए।

दातून करो तो सफाई से करो। दातून करते समय घूमो मत, झूमो मत क्योंकि उससे मुंह से मंजन का झाग गिर सकता है। एक जगह बैठकर दातून करो। दातून चीरकर जहां-तहां मत फेंको, कचड़ेदानी में फेंको। ब्रश करते हो तो भी घूम-घूमकर मत करो किंतु एक जगह ही बैठकर या खड़े होकर करो। जहां थूकने की जगह हो वहीं थूको। हर जगह मत थूको। हर जगह पेशाब न करो किंतु पेशाब करने की जगह है वहीं पेशाब करो। खड़े होकर पेशाब मत करो, बैठकर करो और सफाई रखो। बिस्तर से उठो तो साफ ढंग से उसे बटोरकर कायदे से और करीने से रखो। उसे ऊल-जलूल न रखो। फाटक खोलकर मत चले आओ किंतु बन्दकर के आओ। यदि ताला भी लगाने की जरूरत हो तो लगा दो। यह सब पूजा है। यह सावधानी बरतो।

जिसके जीवन में व्यवस्था होती है उसके अन्दर में भी व्यवस्था होती है। जो बाहर का मोटा काम व्यवस्थित नहीं कर सकता वह अन्दर का काम व्यवस्थित क्या करेगा। जो अपने शरीर को साफ नहीं रख पाता, अपने कपड़े साफ नहीं रख पाता, खान-पान का व्यवहार साफ नहीं रख पाता, घर-द्वार की सफाई जो नहीं रख पाता, जिसके बाहर का व्यवहार साफ-सुथरा नहीं है उसका भीतर कैसे साफ-सुथरा रहेगा। यह बाहर वाला ही तो अन्दर का सिगनल है। इसलिए पूरे जीवन की प्रक्रिया को पूजा समझना चाहिए और उसको व्यवस्थित होकर करना चाहिए।

यदि बाजार से दस सौदा लाना है तो चेष्टा से दसों सौदा लेकर आयेंगे तो आपके मन में संतोष रहेगा और अगर बाजार जाकर गप्पबाजी और लापरवाही करने लगे, कुछ सौदा लाये और कुछ भूल गये तो पश्चाताप होगा और घरवाली की भी झिड़की सहनी पड़ेगी। अगर मन लगाकर बाजार करेंगे और सब सौदा लायेंगे तो संतोष होगा।

कमरे में ताला लगाना चाहिए था लेकिन नहीं लगाये और आकर यहां ध्यान में बैठ गये तो ध्यान में ख्याल होने लगेगा कि कमरे में तो ताला ही नहीं लगा।

तब ध्यान बढ़िया नहीं होगा इसलिए ताला लगाकर आना चाहिए। ताला लगाने पर भी कुछ हो जाये तो कोई बात नहीं। तब मन में होगा कि भाई, जो सावधानी बरतनी थी वह बरत लिया गया था। जो करना था वह कर लिया गया था। इसलिए मन निश्चित रहेगा। तो सारा व्यवहार ही पूजा है और जो उसको ठीक ढंग से करता है उसका मन ठीक रहता है।

मैंने बीच में कहा था कि जैसे कुछ गीली वस्तुओं में खमीर उठता है वैसे ही हमारा मन भी एक खमीर है जो व्यवहार से उठता है। जिसके व्यवहार में आपाधापी, स्वार्थ, उद्वण्डता और उन्माद है, जिसके व्यवहार में मर्यादाविहीनता और लोलुपता है, उसे कभी सुख नहीं होता है। चीजों को बटोरकर लोग सोचते हैं कि उससे सुख होता है। चीजों की जरूरत तो है लेकिन थोड़ी चीजों की जरूरत है। चीजों का जखीरा बटोरने की जरूरत नहीं है। हम जो बहुत संग्रही होते हैं यह गलत है। इसलिए अधिक संग्रह की भी तृष्णा हमें छोड़ना चाहिए। व्यक्तिगत जीवन के लिए उतनी ही वस्तुएं रखनी चाहिए जितने से जीवन गुजर हो जाता हो। बाकी चीजों को समाज, परिवार और लोगों की सेवा में लगा देना चाहिए। जीवन गुजर के लिए हमेशा थोड़ी ही वस्तुओं की आवश्यकता है। ज्यादा जरूरी तो यह है कि हम अपने मन को ठीक करें। खाने-पीने, मकान-दुकान, कपड़े-लत्ते और तमाम ज्ञान-ताम बढ़ाने की बात ज्यादा चलती है। यह होड़ मची रहती है कि दूसरे से हम आगे बढ़ जायें। बाहर-बाहर में आगे बढ़ने की चेष्टा हो रही है लेकिन भीतर का कुछ ख्याल ही नहीं है। जिसे कल्याण प्रिय है, शांति प्रिय है, परमानन्द प्रिय है, अखण्ड आनन्द प्रिय है, वह आत्मविश्लेषण करे। आत्मविश्लेषण का मतलब है अपने आप का विश्लेषण। सुबह से शाम तक मेरे कर्मों की जो प्रक्रिया है उसमें कहां-कहां त्रुटि है यह विचार करना आत्मविश्लेषण है।

जीवन में कभी-कभी बड़ी-बड़ी उलझनें हो जाती हैं या कोई-कोई जीवन ही ऐसा होता है कि उसमें बड़ी-बड़ी उलझनें होती हैं, उनको कैसे करें। इसका

समाधान है कि उसमें जितना बन सके उतना सुधार करें। कुछ पेशे ही प्रायः ऐसे होते हैं जो आपाधापी से भरे होते हैं। जैसे वकील लोगों का पेशा है। प्रायः वकील लोग मुझसे यह पूछते हैं कि हम क्या करें। इसका उत्तर है कि उसमें भी जितना बन सके सुधारें। जो सही वकील होता है वह किसी को नाजायज अधिकार दिलाने का कार्य नहीं करता है।

अनेक ऐसे जबरदस्त लोग हैं जो किसी गरीब की जमीन को कब्जियाना चाहते हैं। ऐसे लोग वकील से मिलते हैं और कहते हैं कि इतने लाख रुपये हम आपको देंगे आप ऐसा काम करवाओ। इसप्रकार वे षड्यन्त्र रचते हैं और कब्जा कर लेते हैं और कुछ वकीलों के द्वारा भी इसके लिए गैर कानूनन काम शुरू हो जाता है। इसके लिए वे काफी रुपया लेते हैं लेकिन अच्छा वकील ऐसा नहीं करता है। वह तो हक दिलाने का प्रयास करता है और हक दिलाने में भी झूठ-फुर कुछ चलता है। इसलिए वहां भी अच्छाई का स्तर है।

व्यापार में भी बहुत झंझट है और आज के युग में तो और ज्यादा कम्पटीशन है लेकिन इस दशा में भी सभी व्यापारी एक जैसे नहीं हैं। एक व्यापारी ही दूसरे व्यापारी के लिए मुझसे कहता था कि इतना धन उनके है और वे बुढ़ा गये हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि बाबू, अब तुम सही वाला काम करो, गलत वाला काम न करो लेकिन वे मुस्करा देते हैं। वे चंदन लगाते हैं और माला पहने रहते हैं, सुन्दर देवता के समान दिखाई भी देते हैं लेकिन बहुत ठगते हैं।

ठगी का काम वह व्यापारी भी करता था लेकिन वह कहता था कि हम तो अब सही करते हैं और उसमें जो मिलता है उसमें हमें अब बड़ा संतोष रहता है लेकिन “वे” हैं कि अब भी छोड़ नहीं रहे हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि आप बहुत धनी हैं, आपके लड़के-बच्चे भी आखीर कमायेंगे। आप ऐसा गलत क्यों करते हैं लेकिन वे मुस्करा कर रह जाते हैं।

सुधार हर जगह है लेकिन कई ऐसी जंजाली जगहें हैं जहां पर उलझनें ज्यादा हैं लेकिन उसमें भी सुधार के रास्ते हैं। जो जिस श्रेणी में है उसमें रहकर उसे अपने

को सुधारने की जरूरत है लेकिन यह समझते रहना है कि यहां की उन्नति कुछ काम न देगी। यहां की उन्नति तो यहीं काम नहीं देगी, आगे क्या कहा जाये। बहुत कुछ उन्नति हुई है लेकिन गलत तरीके से यदि हम रह रहे हैं तो चित्त में अशांति बनी रहेगी। बाहर पुजाई होगी, प्रतिष्ठा होगी, धन-दौलत रहेगा लेकिन अन्दर में खोखला रहेगा। फिर इस उन्नति का क्या मतलब है। अन्दर से भी भरा-भरा हो तब ठीक है। बाहर से भरा-भरा लगता है लेकिन अन्दर से खाली-खाली है तो क्या मतलब है। हरदम अभाव लगता है, हरदम असंतोष लगता है, हरदम खिन्नता, उद्वेग, खीझ है और साथियों को झिड़कते रहते हैं तो इसका मतलब क्या है। गृहस्थ हैं तो मां-बाप, बाल-बच्चों के प्रति, और गुरु हैं तो शिष्यों के प्रति, उलझे-उलझे रहते हैं। ये लक्षण यही बताते हैं कि अन्दर में गड़बड़ी है।

जब अन्दर में ठीक हो जायेगा तब उद्वेग नहीं होगा। किसी की गलती होगी तो प्यार से उसे समझाया जायेगा। गलती किसमें नहीं है। किसका ऐसा सिर है जो यह कह दे कि मुझसे गलती कभी नहीं हुई है। छोटी-छोटी गलती सबसे हो जाती है। बोलने में, बरतने में और बात करने में गलती हो जाती है। कई बार निर्णय लिया जाता है कि यह कार्य इस ढंग से किया जाना चाहिए लेकिन चार घंटे के बाद लगता है कि इस ढंग से नहीं होना चाहिए बल्कि इस ढंग से होना चाहिए। और इससे यह पता लग जाता है कि अपने मन में गड़बड़ी है। इसीलिए साथियों से राय-बात करके ही कोई कार्य करना चाहिए।

अहंकारी लोग साथी से राय-बात नहीं करना चाहते। वे सोचते हैं कि हम तो मालिक हैं हम जैसा चाहेंगे वैसा ही होगा। ऐसा करना गलत है। सबसे राय लेनी चाहिए। अपने मन को संभालने के लिए ही हमें अपने व्यवहार को संभालना है। व्यवहार मात्र को पूजा समझना है। खाने-पीने, बोलने-बरतने, व्यापार-धन्धा, रोजी-रोटी की जितनी क्रियाएं हमारे जीवन में होती हैं उन सबमें सावधानी की जरूरत है क्योंकि वह सब पूजा है।

चेतन मनुष्यों का जो बरताव है वही सबसे जटिल है। इसीलिए उसमें मैंने कहा कि श्रद्धा, स्नेह और प्रेम इन तीनों का बरताव जब होगा तब सब सुधर जायेगा। जिसके प्रति हमारी श्रद्धा है उसके प्रति हम उदासीन कैसे होंगे। जिसके प्रति हमारे मन में स्नेह है उसके प्रति हम घृणा कैसे करेंगे। जिसके प्रति हमारे मन में प्रेम है उसका हक हम कैसे मारेंगे। इसलिए श्रद्धा, प्रेम, स्नेह ये सब अगर व्यवहार की बुनियाद में है तो हमारे सब कर्म सही होंगे और कर्म जब सही होंगे तब मन सही होगा। जब मन सही होगा तो जीवन सही होगा और सही मन ही ध्यान में जल्दी प्रवेश करता है। अच्छे मन के साथ थोड़े समय का भी ध्यान बहुत लाभकारी होता है।

जिसका व्यवहार ही गड़बड़ है, जिसका मन चंचल है, उद्वेगित है वह समाधि में क्या पहुंचेगा। वह समाधि के लिए बैठा भले रहे लेकिन समाधि में नहीं पहुंच सकता। यह भी ठीक है कि कोई ऐसा ही है तो बैठना तो शुरू किया लेकिन उसको बुनियाद पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

व्यवहार से मन बनता है और फिर उलटकर मन से व्यवहार बनता है। इसलिए जितना बढ़िया मन होता जायेगा उतना ही बढ़िया व्यवहार होता जायेगा। जितना अच्छा व्यवहार होता जायेगा उतना ही अच्छा मन भी होता जायेगा। अच्छे मन से फिर और अच्छा व्यवहार होता जायेगा। इसप्रकार अच्छा मन और अच्छा व्यवहार एक दूसरे को बल देते हैं। इसलिए व्यवहार और मन इन दोनों का संतुलन होना चाहिए।

तराजू से जब हम सामान तौलते हैं तब एक तरफ बांट रखते हैं और दूसरी तरफ सामान रखते हैं। जब तराजू की डांडी सीधी रहती है तब माप सही मानी जाती है। इसी प्रकार हमारा मन और हमारा व्यवहार जब संतुलित रहता है तब जीवन सही माना जाता है। कौन ध्यानी है, कौन परमार्थी है, कौन साधक है, कौन संत है और कौन भक्त है यह कपड़ा और वेष से नहीं जाना जा सकता। यह तो व्यवहार से ही जाना जा सकता है।

इसलिए व्यवहार से अपने ही को जानना है। व्यवहार से दूसरे को जानने के चक्कर में नहीं पड़ना है। यदि ऐसा आप किये तो दूसरे को आप समझ नहीं पायेंगे और उससे घृणा कर लेंगे। किसी में बहुत सद्गुण हैं लेकिन थोड़ी-सी त्रुटि हो गयी बस आप समझ लिये कि बहुत बुरा है लेकिन वह उस त्रुटि को छोड़कर सही हो जाता है और आप उस त्रुटि को माने बैठे हैं। इसलिए दूसरे को समझने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए किंतु अपने को समझना चाहिए।

जहां साथी-संबंधियों की बात है वहां उनको निभाने की जरूरत पड़ती है। उस दृष्टि से उनको समझना अच्छा है क्योंकि उनको समझे बिना उनको हम निभा नहीं सकते लेकिन बहुत गहराई में उतरकर हम दूसरे को नहीं जान सकते हैं। अपने को ही हम समझ सकते हैं क्योंकि हमारा मन ही हमारे सामने है। अपने मन को समझ लेना पूरे जीवन को समझ लेना है। मन बड़ा महत्त्वपूर्ण है लेकिन मन के तरफ से इतनी उदासीनता मनुष्य को है कि हद है। केवल धन, जन, प्रतिष्ठा और पद की होड़ मची हुई है। मन की ओर किसी का ख्याल ही नहीं है। वे लोग दुर्लभ हैं जो मन पर ध्यान देते हैं।

जहां तक पीड़ा है मन की ही है। ऐसे-ऐसे लोग मिलते हैं, जो अच्छे हैं, समझदार हैं, विद्वान हैं, ऊंचे पदों पर हैं लेकिन मानसिक पीड़ा झेलते रहते हैं। वे कहते हैं कि महाराज, मन शांत नहीं होता है, उद्वेगित रहता है। उनके मन में विश्राम नहीं है। अगर मन में ही विश्राम नहीं है तब कौन फल है पद और प्रतिष्ठा का। इसलिए आपलोगों का जो ध्यान है, यह विवेक में ढलना चाहिए। होना यह चाहिए कि हर समय मन निर्मल रहे और उससे आप काम करें। जब आप निर्मल मन से काम करेंगे तब जब ध्यान में जायेंगे तो ध्यान में भी बड़ी सरलता से पहुंचेंगे, समाधि में बड़ी सरलता से पहुंचेंगे। लेकिन इसका दरम्यान तो कुछ होना ही चाहिए, कुछ समय तो होना ही चाहिए। झट से तो कोई सिद्ध हो नहीं जाता, समय लगता है। इसलिए धैर्य

रखना चाहिए। कुछ दिन ध्यान किये, अध्ययन किये, सत्संग किये, संतों के पास आये-गये, उनके दर्शन किये लेकिन मन में विकार उठते हैं तो आप घबरा गये और मान लिये कि कुछ ध्यान नहीं होता है। अरे भाई! ध्यान होता है। इसमें समय लगता है और उसके साथ-साथ जोर जितना ज्यादा होगा उतना काम जल्दी होगा। संवेग जितना तीव्र होगा उतनी जल्दी सफलता होगी और शिथिलतापूर्वक होगा तो धीरे-धीरे सफलता होगी।

गति क्या है और समय क्या है, साधना में यह महत्त्व की बात है। यदि गति तेज है तो कम ही समय में साधना की सफलता हो जायेगी और गति धीमी है तो समय अधिक लगेगा लेकिन लगे रहने पर सफलता होती है यह पक्का विश्वास करना चाहिए। ध्यान साधना में समय लगता है। एक काल में ही कोई सिद्ध नहीं होता है। कोई सच्चे मन से लग जाये तो आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता पक्की है। व्यावहारिक क्षेत्र में तो सफलता और असफलता दोनों चलती रहती है और यह समझ लीजिए कि व्यवहार में अन्त में सब का सब डूब जाना है। जितनी भौतिक उन्नति है सब का सब डूबना है। शरीर गया तो सब गया। और शरीर जाने पर ही क्या, शरीर रहते-रहते भी अपना जो कुछ बनाया है वह सब खो जाता है। वह रहनेवाला नहीं है लेकिन उसके लिए भी करना पड़ता है। क्योंकि जीवन है तो उसे भी चलाना है लेकिन जो स्थाई उन्नति है वह आत्म उन्नति है और उसका होना पक्का है। उसमें आप बिलकुल दृढ़ निश्चय कर लें कि सफलता होगी ही होगी। आप मन से लग जायें, बस सफलता होगी क्योंकि इसमें अपने विकारों को हटाना है, मनोविकारों को हटाना है और गलत कर्मों को हटाना है, स्वभाव को सुधारना है और इसमें हर इंसान को स्वतंत्रता है।

भौतिक चीजों की उपलब्धता में हमारी परतंत्रता है। हम जितनी भौतिक उन्नति चाहते हैं उतनी उपलब्ध नहीं होगी और उपलब्ध चीजें भी खिसक जायेंगी। धन आता है जाने के लिए और संयोग होता है वियोग के लिए। जवानी आती है खिसक जाने के लिए। हम लोग

यहां ध्यान के आसनों पर बैठे हैं उठ जाने के लिए। हम यहीं कैसे बैठे रह सकते हैं। दुनिया की चीजें चल-विचल हैं। वे सब साझी की चीजें हैं। उसमें सर्वथा सफलता मिलना मुश्किल है और उसमें जो सफलता मानी भी जाती है वह तो कुछ समय के लिए है और वे अंत में खो जानेवाली है लेकिन आध्यात्मिक सफलता पक्की है और हो गयी तो सदा के लिए हो जाती है। हमें यह विश्वास करना चाहिए कि अगर हम आज ठीक हैं तो शरीर के छूट जाने के बाद भी ठीक रहेंगे और आज गलत हैं तो शरीर जब छूट जायेगा तब भी गलत रहेंगे।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, इंग्लिश, बांगला आदि कई भाषाओं के पढ़ने और जानने वाले लोग सो जायें तो उनकी सीखी भाषाएं उनके सो जाने से लुप्त नहीं हो जायेंगी। जगने पर वे लोग फिर अपनी-अपनी भाषा में बोलेंगे तथा अपनी-अपनी भाषा को समझेंगे। इसीप्रकार मर जाना तत्त्व का अभाव और सत्ता का मिट जाना नहीं है। वह तो केवल वियोग है और जो कुछ आज हम करते हैं उसका परिणाम तो सामने आयेगा। इसलिए आज हमारी जो आध्यात्मिक उन्नति हुई है वह अक्षुण्ण है और यह सदा अक्षुण्ण रहेगी लेकिन भौतिक उन्नति चाहे जितनी बड़ी होगी वह आयी और गयी के समान है।

हमारे भारत देश का जो सबसे बड़ा व्यावहारिक पद है वह प्रधान मंत्री का है लेकिन कई प्रधान मंत्री बेचारे आज पदमुक्त होकर अपने कमरों में पड़े हैं। अब उनका कुछ ऐश्वर्य नहीं है और उनकी कलम से अब कुछ भी होने वाला नहीं है। ऐसे ही आप सबको समझ लीजिये। सबकी यही दशा होनी है। एक दिन सबका कुछ नहीं रहेगा।

व्यवहार से मन बनता है और मन से व्यवहार बनता है। इसलिए व्यवहार और मन इन दोनों को सुन्दर बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। इसी से हमारे जीवन में सुख के फूल खिलेंगे और मोक्ष के भी फूल खिलेंगे। इसी से हम सच्चा सुखी होंगे। आज इसी के साथ अब मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। □